इकाई –1: कृषि का परिचय एवं कृषि मौसम विज्ञान (Agronomy)

1.1 कृषि की परिभाषा एवं कृषि का संक्षिप्त इतिहास

कृषि की परिभाषा

अंग्रेजी भाषा का शब्द Agriculture दो लैटिन शब्दों "Ager" तथा "Cultura" के संयोग से बना है। "Ager" का शाब्दिक अर्थ है– भूमि या मृदा (Soil) एवं "Cultura" का शाब्दिक अर्थ है –खेत जोतना (Cultivate)।

कृषि मनुष्य मात्र का वह कार्यकलाप है, जो पृथ्वी के संसाधनों के इष्टतम् उपयोग के द्वारा पाँच उद्देश्यों, जो अंग्रजी के "F" अक्षर से शुरू होता है, यथा भोजन (Food), दाना (Feed), चारा (Fodder),रेशा (Fibre) एवं जलावन (Fuel) की प्राप्ति के लिए किया जाता है, जैसे– फसलोत्पादन, फलोत्पादन, पुष्पोत्पादन, शाकोत्पादन, पशुपालन, मधुमक्खी पालन, रेशम कीट पालन, लाख कीट पालन, केंचुआ पालन (Vermiculture), मछली पालन आदि ।

कृषि की आधुनिक परिभाषा ऊपर लिखित परिभाषा को संक्षिप्त रूप प्रदान करती है, जिसके अनुसार **''कृषि मनुष्य समुदाय का वह कार्य कलाप है, जिसका मुख्य उद्देश्य, पृथ्वी के संसाधनों के इष्टतम् उपयोग के द्वारा भोजन, वस्त्र के लिए रेशे एवं जलावन का उत्पादन है।''** (Agriculture is the activity of mankind primarily aimed at production of food, fiber and fuel with optimum use of terrestrial resources.)

कृषि एक परिचय

कृषि का इतिहास लगभग उतना ही पुराना है, जितना कि आधुनिक मानव (***Homosapiens***) का। मानव मूलतः शाकाहारी प्रवृत्ति का जीव है, परन्तु शारीरिक पोषण के लिए उपलब्ध भोज्य पदार्थों अर्थात् वनस्पति या मांस दोनों का उपयोग करता आया है। बन्दर को मानव मात्र का पूर्वज कहा गया है। बन्दर जाति भी मूलतः शाकाहारी प्रवृत्ति का जीव है। उपलब्धता के आधार पर मानव मांस एवं वानस्पतिक पदार्थों का समान रूप से उपयोग करता रहा है। प्रकृति में भोज्य वानस्पतिक पदार्थ जैसे,– कन्द–मूल, फल, फूल, पत्तियाँ इत्यादि स्वतः उपलब्ध रहे हैं और मानव मात्र ने बुद्धि के विकास के साथ उन्हें उगाने की कला भी विकसित कर ली। वनस्पति उगाने के उद्‌यम के कुछ पूर्व और उसके साथ–साथ भी मानव ने पशुओं का पालन शुरू कर दिया था। कृषि की आधुनिक परिभाषा के अनुसार कृषि का प्रादुर्भाव तभी से हुआ।

जीवित रहने के लिए प्राणीमात्र के लिए आवश्यक है कि वह अपना भोजन खुद जुटाये। मनुष्य भी उन कन्द–मूल, फल, फूल या पौधों के उन भाग को जान गया था जो उनका भोजन बन सकता था, परन्तु उसे कृषि शब्द की संज्ञा नहीं दी जा सकती थी। कृषि तो मानव मात्र का वह सार्थक प्रयास था जिसके द्वारा उसने स्वयं भोज्य पदार्थ उत्पन्न करना सीख लिया चाहे वह मांस या दूध के लिए पशुओं का पालन करना हो या मिट्‌टी में बीज डालकर पौधा उत्पन्न करने की क्रिया हो।

प्राक् वैदिक काल (Pre Vaidic Period) में कृषि

ईसा के 10000 वर्ष पूर्व तक मनुष्य भोजन के लिए शिकार अथवा वानस्पतिक भोज्य पदार्थों के संग्रहण पर आश्रित रहा है। सभ्यता के विकास के क्रम में पहले उसने भेड़ पालन शुरू किया और फिर बकरी पालन। यही कृषि की वास्तविक शुरुआत थी। ईसा पूर्व 8700 से 7500 के बीच पशुपालन ही मानव की कृषि का आधार था। ईसा पूर्व लगभग 7500 से गेहूँ एवं जौ की खेती के प्रारम्भ के चिह्न मिलते हैं। सभ्यता का विकास पृथ्वी के विभिन्न भागों में अलग–अलग समय में शुरू हुआ। परन्तु, थोड़े परिवर्तन के साथ पशुपालन एवं खेती का प्रादुर्भाव लगभग इसी क्रम में हुआ। समय के बढ़ते चरण के साथ मानव ने गाय–भैंस जैसे दूध देने वाले पशुओं और सूकर तथा मांस प्रदायी पशुओं को पालतू बनाया। यह सब लगभग ईसा पूर्व 6000 में शुरू हुआ। धीरे–धीरे खेती में नई फसलों का समावेश होता चला गया। ईसा पूर्व 4400 में पहले मक्का और ईसा पूर्व 3500 में आलू की खेती का प्रारम्भ हुआ। ईसा पूर्व 3000 में एक क्रान्तिकारी अन्वेषण हुआ ज़ब मनुष्य ने पहला हल बनाया। ट्रैक्टर के आविष्कार के पूर्व तक यह हल ही कृषि का मेरुदण्ड बना रहा। ईसा पूर्व 2300 से चना, सरसों एवं कपास की खेती शुरू की गई। ईसा पूर्व 2200 में सबसे महत्त्वपूर्ण फसल धान की खेती, भारतवर्ष में शुरू की गई।

वैदिक काल (Vaidic Period) में कृषि

वैदिक काल का प्रारम्भ होते–होते मानव ने अनेकों नई–नई फसलों की खेती शुरू कर दी। इसी अवधि में मडुवा (Ragi) ज्वार

एवं ईख की खेती का प्रारम्भ हुआ। वैदिक काल की कृषि की सबसे बड़ी देन लोहे की खोज थी, जो ईसा पूर्व 1400 में हुई। इसके पूर्व काँसे के यंत्र या उपकरण बनते थे। लोहे की खोज ने कृषि विकास को गति प्रदान की। खुरपी, कुदाल, हल के लिए लोहे के फार इत्यादि जो अपेक्षाकृत अधिक कड़े–तीक्ष्ण और कम घिसने वाले थे, ने कृषि कार्य को आसान बनाया। वैदिक काल में ही ईसा पूर्व लगभग 1500 ईसवी में सिंचाई की शुरुआत हुई। फसलों की सिंचाई ने कृषि को अत्यन्त ही लाभप्रद बना कर उसे नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया।

उत्तर वैदिक काल (Post Vaidic Period) में कृषि

उत्तर वैदिक काल तक कृषि समाज का मेरूदण्ड बन चुका था। विश्व के हर हिस्से में जहाँ सभ्यता ने आँखें खोली, कृषि मानव मात्र के जीवन और जीविका का आधार बन गया। इस अवधि में कृषि विज्ञान को समझने एवं निरंतर विकसित करने के प्रयास चलते रहे। विश्व के विभिन्न हिस्सों से, जहाँ–जहाँ मानव के कदम अन्वेषण या व्यापार के लिए गए, वहाँ से नई फसलें और नई तकनीक आयातित होकर कृषि को समृद्ध करते रहे। आज यह सोच पाना भी आश्चर्यजनक प्रतीत होगा कि मात्र 500 वर्ष पहले तक भारत के लोग जानते भी नहीं थे कि आलू, पपीता, शकरकन्द, टमाटर, मिर्च, मूंगफली, तम्बाकू, रबड़, अमरूद, अनानास, शरीफा, काजू, और अनार क्या होता है? और कैसा होता है? आज इन चीजों के बिना जीवन की कल्पना भी दुष्कर है। लगभग ये सारी फसलें पुर्तगाली अन्वेषकों एवं व्यापारियों ने भारतवर्ष तक पहुँचाई। कृषि के क्षेत्र में भारतवर्ष का योगदान भी कुछ कम नहीं रहा है। धान की फसल, विश्व को, भारत की देन है। गन्ना, अनेकों दलहनी फसलें और विशेषतः फलों का राजा आम विश्व को भारतवर्ष की देन है।

सिन्धुघाटी सभ्यता का इतिहास तथा हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो की खुदाई ने बतलाया है कि उस समय यहाँ गेहूँ, जौ, तिल, मटर, खजूर, कपास, मसूर आदि की खेती होती थी। लोग लकड़ी के हल और पहिये का प्रयोग करते थे। यह सभ्यता लगभग ईसा पूर्व 3000 –1750 तक फली–फूली। वहाँ के लोगों को रूई से बिनौला निकालने (Ginning), धागा बनाने (Spinning) और वस्त्र निर्मित करने का ज्ञान था। भारत वर्ष का यह प्राचीनतम् क्षेत्र था जहाँ कृषि ने अपने पैर पसारे थे। दक्षिण भारत वह दूसरा प्रमुख क्षेत्र था जहाँ कृषि का विकास हुआ। यहाँ ईसा पूर्व लगभग 2500 में मडुआ एवं कई दलहनी फसलों की खेती होती थी। भारत वर्ष का तीसरा महत्त्वपूर्ण भू–भाग दक्षिण, पठार (Deccan Plateau) का उत्तर–पश्चिमी भू–भाग था जहाँ से धान की खेती विकसित हुई। बाद में गेहूँ, कपास, तीसी, मसूर, अन्य दलहन एवं मोटी धान्य फसलों की भी खेती यहाँ होने लगी। उत्तर वैदिक काल तथा ईसा के जन्म के बाद के वर्षों में कृषि सामान्य ढंग से चलती रही। लोहे के हल के फार एवं कुदाल के निर्माण ने बार–बार की जुताई एवं मिट्टी को महीन बनाने को महत्त्वपूर्ण बनांया। पौधों के भोजन के रूप में गोबर का उपयोग भी किया जाने लगा। यह स्थिति एक लम्बे समय तक समान रूप से चलती रही। इस अवधि में सिंचाई को उन्नत करने के प्रयास होते रहे। लाठा–कूड़ी, मोठ एवं रहट इन्हीं प्रयासों के प्रतिफल थे।

आधुनिक कृषि का इतिहास

आधुनिक कृषि का इतिहास मुख्यतः पौधों के पोषण के वैज्ञानिक आधार के इर्द–गिर्द केन्द्रित रहा है। परन्तु इसके अतिरिक्त उन्नत किस्मों का विकास, कृषि यन्त्रों में सुधार, खर–पतवार नियंत्रण के लिए रसायनों के प्रयोग, पौधा संरक्षण के नये–नये रसायनों की खोज इत्यादि महत्त्वपूर्ण क्षेत्र रहे हैं।

पादप–पोषण पर क्रमिक वैज्ञानिक प्रयोग वैन हेलमॉन्ट के प्रयोगों में मिलता है, जिन्होंने 1577 से 1644 ई0 के मध्य बताया कि सिद्धान्ततः वनस्पति का आधार जल है। 1674 ई0 से 1741 ई0 के बीच जेथरो टूल (Jethro Tull) नामक कृषि वैज्ञानिक ने "Horse hoeing husbandry" नामक एक किताब लिखी। उनके प्रयोगों के आधार पर सीड ड्रील (Seed drill) एवं घोड़ा चालित कल्टीवेटर (Horse Drawn Cultivator) का निर्माण हुआ। Jethro Tull की परिकल्पना थी कि पौधे मिट्टी के अत्यन्त महीन कण भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं। बाद में यह परिकल्पना गलत लगने लगी। कुछ वैज्ञानिकों ने पाया कि गमलों में पौधे उगाने के बाद मिट्टी के वजन में कोई कमी नहीं आती है। बाद में Aurthur Young नामक वैज्ञानिक (1741–1820) ने कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयोग किए। उन्होंने पौधों को गाय का गोबर, सोडियम, गन पाउडर जैसे कुछ रसायन पोषक पदार्थों के रूप में देकर देखा और कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले। पादप–पोषण (Plant Nutrition) के क्षेत्र में सबसे महत्त्वपूर्ण प्रयोग जस्ट्स वॉन लीबिग (Justus Von Liebig) ने 1840 में किया। उन्होंने कृषि रसायन (Agricultural chemistry) एवं पौध कार्यकी (Plant Physiology) पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रयोगों को क्रमिक रूप दिया। उन्होंने बतलाया कि पौधे कुछ रसायन, अपने भोजन के रूप में मिट्टी से ग्रहण करते हैं। सन् 1842 में सर जॉन बेनेट लावेज (Sir John Bennet Lawens) ने रॉक फॉस्फेट को प्रतिक्रिया करा कर सुपर फॉसफेट बनाने के तरीके को पेटेन्ट (Patent) कराया। इसके साथ ही रसायनिक उर्वरकों के निर्माण के द्वार खुले।

नई उन्नत किस्मों के विकास का कार्य, कृषि के विकास के साथ ही निरन्तर होता रहा है। किसान बेहतर बालियों, भुट्टों एवं बीज को, अगले वर्ष लगाने के लिए, चुन कर रखते रहे हैं। किसी अन्य क्षेत्र से नई किस्म को लाकर यह देखा जाता रहा है कि वह किस्म नये क्षेत्र विशेष में कैसी उपज देती है। कृषि के इतिहास में बाहरी किस्मों का नये क्षेत्र में प्रवर्तन (Introduction) की पद्धति से अनेकों उन्नत किस्में विकसित होती रही हैं। नई उच्च फलनशील किस्मों के विकास में क्रान्तिकारी परिवर्तन तब हुआ जब कृषि में संकरण (Hybridization) की पद्धति अपनाई गई। संकरण की क्रिया की मदद से दो या दो से अधिक वांछित गुणों को जो अलग–अलग किस्म के पौधों (Plant type) में मिलते हों, उनका समन्वयन एक पौधे में किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि एक किस्म में उपज क्षमता अधिक है और दूसरी किस्म में रोग रोधकता है तो संकरण के द्वारा इन दोनों गुणों को एक ही पौधे (Plant type) में उत्पन्न किया जा सकता है। गेहूँ की फसल में नॉरीन–10 (Norin-10) एवं धान की फसल में डी0 जी0 वु0 जेन (Dee Gee Woo Gen) जैसी बौनी जाति के पौधों की खोज ने युगान्तरकारी परिवर्तन की आधारशिला रखी। पूर्व के ऊँचे कद के प्रभेदों का इन बौनी प्रजाति के पौधों से संकरण द्वारा धान एवं गेहूँ की बौने कद की किस्में विकसित की गई, जो अन्ततः विश्व के लगभग हर भाग में हरित क्रान्ति लाने का कारण बनी। 60 एवं 70 के दशकों में इन बौनी कद की उच्चफलनशील किस्मों ने भारतवर्ष में भी हरित क्रान्ति की आधारशिला रखी, जिसके फलस्वरूप भुखमरी एवं कुपोषण से जूझता भारत खाद्यान्न का एक निर्यातक देश भी बना। जिन वैज्ञानिकों ने गेहूँ एवं धान की इन बौने कद के पौधों (Plant type) को ढूँढा, मानव समुदाय सदैव उनका ऋणी रहेगा। किस्मों के उन्नयन के क्षेत्र में कृषि अनुसंधान ने एक और क्रान्तिकारी प्रगति की जब मक्का, ज्वार, बाजरा, धान, गेहूँ और सब्जियों की संकर (Hybrid) किस्में बनाई जाने लगी। विभिन्न फसलों के संकर बीजों में संकर तेज (Hybrid vigour) के कारण फसलों की उपज क्षम्ता काफी अधिक बढ़ गई। किस्मों के विकास के क्रम में अनुवांशिकी के द्वारा किस्मों में वांछित गुण पैदा किया जा रहा है। इस विधा से कई फसलों में नई किस्में विकसित की गई हैं, जिनमें से अवांछित गुणों को हटा कर वांक्षित गुण उत्पन्न किए गए। परन्तु यह विधा अभी भी अनुसंधान के दौर से गुजर रही है।

कृषि यांत्रिकीकरण (Farm Mechanization) की दिशा में भी निरंतर विकास होते रहे हैं। कृषि यांत्रिकीकरण का प्रारम्भ पश्चिमी यूरोप में सन् 1850 के बाद ही हुआ। राबर्ट रैनसम् (Robert Ransome) ने 1785 ई0 में ढलुआ लोहे (Cast iron) का एक फार बनाया और 1803 ई0 में एक स्वयं धार बनाने वाला फार (Self sharpening share) बनाया। 1830 ई0 में पहला कारगर बोआई–यंत्र (Seed drill) का निर्माण किया गया। पहला ट्रैक्टर 1892 ई0 में संयुक्त राज्य अमेरिका (U.S.A.) में सफलता पूर्वक निर्मित किया गया। ट्रैक्टर के निर्माण ने नये–नये यन्त्रों एवं उपकरणों के निर्माण के द्वार खोल दिये।

कृषि अर्थशास्त्र का इतिहास

कृषि इतिहास का एक बड़ा हिस्सा बंजारा प्रवृत्ति (Nomadic) की कृषि का रहा है। मानव को जो स्थान सुरक्षा, पानी की उपलब्धता, भूमि की उपलब्धता एवं भूमि की उर्वरता के दृष्टिकोण से अच्छा लगा वहाँ टिक गए और खेती करने लगे। जब वह स्थान विशेष मानव समुदाय की आवश्यकता की पूर्ति योग्य नहीं रह गया तो वे अपने पशुओं के साथ अन्यत्र चले गए। जब तक भूमि का विस्तार असिमित था और जनसंख्या अपेक्षाकृत नगण्य, तब तक कृषि की यह पद्धति चलती रही। जब जमीन कम होने लगी और अपने स्थापना (Establishment) एवं कार्य–कलापों को स्थानान्तरित करना कठिन होता गया, तब टिक कर (Stable) कृषि संचालित करने की परम्परा चलने लगी। आज भी असम के कुछ पहाड़ी हिस्सों में कृषि स्थल को बदलते रहने की परम्परा है, जिसे झूम (Jhoom) या झूमिंग (Jhooming) की संज्ञा दी गई है। कृषि की ऊपरोक्त पद्धति को Shifting cultivatin का नाम दिया गया।

टिक कर कृषि संचालित करने अर्थात् स्थिर कृषि की परम्परा के बाद हजारों वर्षों तक कृषि जीवन यापन (Subsistence farming) के लिए की जाती रही है । किसान अपनी आवश्यकता के उत्पाद प्राप्त करने के लिए अपने खेतों में एक साथ धान्य, दलहनी, तेलहनी, सब्जी या अन्य फसलें उगाते रहे। तब कृषि को किसी ने उद्योग के रूप में नहीं देखा।

बीसवीं सदी में देखा गया कि कुछ फसलें अन्य फसलों की अपेक्षा ज्यादा उत्पादन या आय दे सकती हैं। कुछ फसलें जैसे गन्ना, आलू, तम्बाकू, पाट ऐसी थीं जो कटते ही बिक कर अच्छी आमदनी दे सकती थीं। इन्हें नकदी फसल की संज्ञा दी गई। तब यह महसूस किया गया कि अपनी आवश्यकता की हर फसल लगाने से बेहतर है कि केवल वही फसल या फसलें लगाई जाए जो भूमि विशेष पर सर्वाधिक उपज दे सकें। उनकी आमदनी से आवश्यकता की अन्य खाद्य सामग्री क्रय कर ली जा सकती थी। इसी सोच के साथ व्यवसायिक कृषि की शुरुआत हुई।

कृषि के साथ–साथ पशुपालन आदि काल से ही कृषि का अभिन्न अंग रहा है। परन्तु कृषि के विकास के साथ यह विचार दृढ़ होता गया कि कृषि को लाभप्रद बनाने के लिए यह अपरिहार्य है कि कृषि के साथ–साथ पशुपालन, मुर्गीपालन, मछली–पालन, बकरी–पालन, सूकर–पालन, मधुमक्खी–पालन इत्यादि जैसी कृषि के अन्य पहलुओं में से कुछ को एक साथ किया जाए। इस

प्रकार एक पहलू के किसी अतिरिक्त उत्पाद (Byproduct) को दूसरे पहलू के उपादान के रूप में प्रयोग कर अत्यधिक लाभ प्राप्त किया जाए, कृषि में संलग्न व्यक्तियों को सालों भर काम मिल सके तथा अन्ततः ग्रामीणों की आर्थिक स्थिति में गुणात्मक सुधार लाया जाए। कृषि की इस पद्धति को Farming system का नाम दिया गया।

विगत कुछ दशकों से मिट्टी के गिरते भौतिक, जैविक एवं रासायनिक गुणों, के कारण उत्पादन क्षमता में हो रहे ह्रास ने वैज्ञानिकों का ध्यान आकृष्ट किया। मिट्टी की उर्वरता (Fertility) एवं उत्पादकता (Productivity) अक्षुण्ण (Conserve) रखने के लिए जैविक खेती (Organic farming), टिकाऊ खेती (Sustainable agriculture), समेकित पोषक तत्त्व प्रबंधन (Integrated Nutrient Management), समेकित कीट प्रबन्धन (Integrated pest Management) जैसी बहुत सारी पद्धतियों का प्रचार प्रसार जोर–शोर से किया जा रहा है।

कृषि एक विकासशील विधा है, जिसमें परिवर्तन एवं सुधार की अनन्त सम्भावनायें हैं। विश्व की बढ़ती जनसंख्या और घटती कृषिगत भूमि वैज्ञानिकों के समक्ष सतत एक चुनौती (Challenge) के रूप में खड़ी है, जो उन्हें नित कुछ नया करने को प्रेरित करती रहेगी।

प्रश्न कोष

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. अंग्रेजी का शब्द एग्रीकल्चर, ... और .... नामक दो लैटिन शब्दों के संयोग से बना है, जिसका अर्थ क्रमशः .... और .... है।
2. कृषि का मुख्य उद्देश्य .... एवं .... का उत्पादन है।
3. ईसा पूर्व .... से .... के मध्य पशुपालन ही कृषि का मुख्य आधार था।
4. हल का आविष्कार ईसा पूर्व .... में हुआ।
5. लोहे का उपयोग ईसा पूर्व .... से प्रारम्भ होना माना जाता है ।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. बनावट (Structure) के दृष्टिकोण से मानव के मूलतः शाकाहारी होने के पक्ष में तथ्य प्रस्तुत करें।
2. वे कौन–कौन सी फसलें हैं जो भारत वर्ष में विकसित होकर अन्य देशों तक पहुँची?
3. पाँच ऐसी फसलों का नाम लिखें, जो पुर्तगालियों के द्वारा भारत लायी गई।
4. वैदिक काल में जिन फसलों की खेती शुरू हुई उनके नाम लिखें।
5. Lawens के किस अनुसंधान ने रसायनिक उर्वरक उत्पादन के द्वार खोले।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. Jethro Jull एवं Justus Von Liebig के कृषि क्षेत्र में योगदान की चर्चा करें।
2. Shifting Cultivation का एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करें।
3. जीवन यापन कृषि (Subsistance Farming) से आप क्या समझते हैं ? संक्षेप में लिखें।
4. मिट्टी की गिरती भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों के संरक्षण के लिए कौन–कौन से कदम उठाये गए ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. व्यवसायिक खेती क्या है ? इसके कौन–कौन से लाभ हैं ? लिखें।
2. कृषि प्रणाली (Farming System) से आप क्या समझते हैं ? संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करें।

1.2 कृषि विज्ञान के विविध विषय

आदिकालीन मानव का जीवन, जानवरों तथा पेड़–पौधों के कन्दमूल एवं फूल–फलों आदि पर निर्भर था। जनसंख्या बढ़ने के साथ ही जब मानव–आहार की आवश्यकता बढ़ी तो प्रकृति से प्राप्त फलों के साथ–साथ फसलों की खेती शुरू हुई।

विज्ञान तथा तकनीकी ज्ञान के विकास के साथ–साथ आधुनिक कृषि का जन्म हुआ। आधुनिक कृषि में मौलिक विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान के मूलभूत सिद्धांतों के व्यावहारिक ज्ञान को विभिन्न विषयों में समायोजित कर कृषि विज्ञान बना है। कृषि विज्ञान के अर्न्तगत निम्नलिखित विषय समाहित हैं :–

1. शस्य विज्ञान

"शस्य विज्ञान, कृषि विज्ञान की वह शाखा है, जिसमें फसल उत्पादन तथा भूमि–प्रबंधन के सिद्धांतों तथा कृषि क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।"

(Agrnomy is the branch of agriculture that deals with principles and practices of crop production and field management)

अंग्रेजी में इसके लिए एग्रोनोमी शब्द प्रयुक्त होता है जो कि ग्रीक शब्दों एग्रोस (Agros) तथा नोमोस (Nomos) से मिला कर बना है। पहले शब्द का अर्थ है "खेत या भूमि" तथा दूसरे शब्द का "प्रबंधन"। इस प्रकार इन दोनों शब्दों का शाब्दिक अर्थ है– "भूमि प्रबंधन"। आज इस शब्द की व्यापकता केवल भूमि प्रबंधन तक ही सीमित नहीं रही है वरन् अब यह कृषि विज्ञान की एक बड़ी तथा मुख्य शाखा बन गई है। इसमें भूमि प्रबंधन के साथ–साथ फसल उत्पादन की आधुनिक विधियों तथा सिद्धांतों का अध्ययन विस्तृत रूप में किया जाता है। कृषि विज्ञान की इस शाखा में पादप, मृदा तथा जल के आपसी संबंधों से जुड़े सभी तकनीकी पहलुओं का विस्तृत रूप से अध्ययन किया जाता है। उनके प्रयोग से भूमि प्रबंध में सुधार होता है, फसल उत्पादन में वृद्धि होती है तथा आर्थिक लाभ होता है। शस्य विज्ञान के महत्त्वपूर्ण अंग है – फसलों में खर–पतवार प्रबन्धन, फसलों में जल प्रबन्धन (सिंचाई एवं जल निकास), प्रमुख फसलों का उत्पादन, पोषक तत्त्व प्रबन्धन एवं फसलोत्पादन का आर्थिक पहलू। शस्य विज्ञान कृषि के सभी विभागों के अनुसंधान का समन्वयक (Coordinator) भी है।

2. मृदा विज्ञान

"मृदा विज्ञान, कृषि विज्ञान की वह शाखा है, जिसमें मिट्टी से सम्बन्धित भौतिक, रासायनिक तथा जैविक के विभिन्न आयामों का अध्ययन किया जाता है।" मिट्टी अपने भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों के कारण ही जीवंत है। मिट्टी की उर्वरता एवं उत्पादकता के आधार पर ही कृषि का भविष्य निर्भर है। मिट्टी का बनना, मिट्टी के गुण, मिट्टी का विश्लेषण, विश्लेषण के आधार पर पोषक तत्त्वों का प्रबंधन, लक्ष्य आधारित उपज प्राप्ति हेतु सुझाव, समस्याग्रस्त मिट्टियों का प्रबंधन आदि मृदा विज्ञान के क्षेत्र है।

3. पादप प्रजनन एवं अनुवंशिकी

पादप प्रजनन एवं अनुवांशिकी, कृषि विज्ञान की सबसे महत्त्वपूर्ण शाखा है। यह मूल रूप से वनस्पति विज्ञान का कृषि में समायोजन है। विभिन्न फसलों की नई–नई किस्मों का विकास पादप प्रजनन एवं अनुवांशिकी का मूल कार्य है।

पौधों की आकृति में सुधार, उपज एवं गुणवत्ता में वृद्धि, उर्वरक एवं सिंचाई के साथ सहिष्णुता, कीट–व्याधि रोधी किस्मों का विकास जीविय व अजीविय प्रभाव रोधी किस्मों का विकास आदि इस विधा के मुख्य कार्य है।

पादप प्रजनन एवं अनुवांशिकी विज्ञान में नये–नये विधाओं जैसे – बायोटेक्नोलॉजी, जेनेटिक इंजिनियरिंग आदि विधाओं के जुड़ने से पादप प्रजनन विज्ञान का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत एवं बहुआयामी हो गया है।

4. उद्यान (बागवानी)

उद्यान विज्ञान, कृषि विज्ञान की वह शाखा है, जहाँ उद्यानिक फसलों जैसे–फल, सब्जी, फूल, औषधीय व सुगंधित पौधों से सम्बन्धित उत्पादन की आधुनिक विधियों व सिद्धांतों का अध्ययन विस्तृत रूप से किया जाता है।

आमदनी बढ़ाने, कृषि भू–भाग का सिमटना, शहरी कृषि, बाग–बगीचों, पार्कों, घर एवं छतों को सजाने इत्यादि की जरूरतों के लिए उद्यान विज्ञान का अत्यधिक महत्त्व है । नेट/पॉली हाऊस, ग्रीन हाऊस में अत्याधुनिक खेती उद्यान विज्ञान के नये क्षेत्र हैं।

5. कीट विज्ञान

कीट विज्ञान जन्तु विज्ञान की एक शाखा है। कृषि में कीटों के कारण फसलों को क्षति होती है । कीट के विज्ञान को समझना तथा फसल को क्षति से बचाना कीट विज्ञान का मुख्य कार्य है। कीट प्रबंधन का तरीका ढूँढ़ना आज के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है।

कीट विज्ञान में न सिर्फ हानिकारक कीटों का अध्ययन किया जाता है, बल्कि लाभदायक कीटों जैसे–मधुमक्खी, रेशम व लाह कीटों तथा उनके उत्पादन तकनीक का अध्ययन किया जाता है।

6. पौधा रोग

फफूंद, जीवाणु, विषाणु तथा पोषक तत्त्वों की कमी आदि के कारण फसलें विभिन्न प्रकार की बीमारियों से क्षतिग्रस्त होती हैं। पौधा रोग विज्ञान, कृषि विज्ञान की वह शाखा है, जिसमें पौधों में लगने वाली बीमारियों के कारणों एवं उनके समाधानों का अध्ययन किया जाता है।

इस विज्ञान के अन्तर्गत न सिर्फ हानि पहुँचानेवाले जीवों, बल्कि अनेक लाभदायक जीवों का अध्ययन व उत्पादन किया जाता है जो बीमारियों को नियंत्रित करते हैं तथा पोषक तत्त्वों की उपलब्धि को भी सुनिश्चित करते हैं।

7. प्रसार शिक्षा

प्रसार शिक्षा, कृषि विज्ञान की वह शाखा है, जिसमें कृषि संस्थानों में विकसित कृषि शोध व तकनीकों को किसानों तक पहुँचाने के सरल व सटीक सम्प्रेषण तथा संवाद से जुड़े तरीकों का अध्ययन किया जाता है। प्रसार शिक्षा का मुख्य कार्य जन सहभागिता के द्वारा क्षेत्रीय आधार पर चिह्नित तकनीकों को जन–जन तक पहुँचाना, उनका मूल्यांकन करना तथा सर्वाधिक उपयुक्त तकनीकों को प्रचारित कर किसानों को स्वावलंबी बनाना है।

8. कृषि अर्थशास्त्र

कृषि अर्थशास्त्र, कृषि विज्ञान की वह शाखा है, जिसमें अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धांतों का कृषि के क्षेत्र में समायोजन व अध्ययन किया जाता है। इस विज्ञान के अन्तर्गत लाभकारी खेती, लागत मूल्य निर्धारण, संसाधनों का समुचित उपयोग, बाजार, ऋण, मजदूर, सहकारिता आदि विषयों का अध्ययन किया जाता है।

कृषि अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है जो कृषि या कृषि से जुड़े उपादानों एवं सेवाओं के उत्पादन, वितरण एवं उपभोग को दर्शाता है। प्रक्षेत्र प्रबंधन किसानों के दृष्टिकोण से उनकी खेती में उद्योग के सिद्धांतों के उपयोग से संबंधित विषय वस्तु है। प्रक्षेत्र प्रबंधन कृषि अर्थशास्त्र के बृहत क्षेत्र की एक विशिष्ट शाखा है, जिनके साधन एवं तकनीक अर्थशास्त्र के नियमों के द्वारा संचालित होते हैं।

9. कृषि अभियंत्रण

कृषि अभियंत्रण मुख्यतः व्यावहारिक भौतिक विज्ञान की शाखा है। कृषि अभियंत्रण में खासकर कृषि के विभिन्न क्रियाकलापों में काम आने वाले यंत्रों की खोज, व्यवहार आदि के बारे में अध्ययन के साथ साथ "सिंचाई एवं जल निकास" तथा भूसंरक्षण पर आधारित शोध किया जाता है। वर्तमान समय में संरक्षित कृषि तथा शून्य कर्षण के साथ ही सीमित मानव संसाधन के कारण विलम्बित कृषि को लाभकारी कृषि का स्वरूप प्रदान करने में इसकी प्रमुख भूमिका है।

10. कृषि सांख्यिकी

सांख्यिकी व्यावहारिक गणित की एक शाखा है जिसका उपयोग अवलोकित आँकड़ों पर आधारित होता है। इसे "आँकड़ों का विज्ञान" भी कहा जाता है। सामान्यतया सांख्यिकी को विभिन्न अर्थों में समझा जाता है। जब एक ही प्रकृति के आँकड़ों में विभिन्न कारकों के प्रभाव से भिन्नता पायी जाती है तो उस स्थिति में कृषिसांख्यिकी के द्वारा ही आँकड़ों के उन कारकों तथा उनके प्रभावों के परस्पर संबंधों का अध्ययन किया जाता है।आँकड़ों को एकत्र करना, वर्गीकृत करना, विश्लेषित करना, आँकड़ों की व्याख्या करना आदि को हम सांख्यिकीय विधियों के नाम से जानते हैं। संक्षेप में कृषि सांख्यिकी को आँकड़ों के विज्ञान की उस शाखा के रूप में जानते हैं जो सांख्यिकीय विधियों की व्याख्या करता है। कृषि सांख्यिकी आँकड़ा आधारित जानकारी का विश्लेषण एवं व्याख्या करने की क्षमता रखता है। यह वह विज्ञान है, जिसमें आँकड़ों को एकत्र करना, उनका प्रस्तुतीकरण, विश्लेषण तथा व्याख्या करने के सिद्धांत एवं विधियों का अध्ययन किया जाता है। कृषि सांख्यिकी का व्यवहार कृषि शोध के क्षेत्र में विशेष रूप से किया जाता है।

प्रश्न कोष

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. अंग्रेजी का शब्द एग्रोनोमी, ... और .... नामक दो ग्रीक शब्दों के संयोग से बना है, जिसका अर्थ क्रमशः .... और ...... है।
2. मृदा विज्ञान में मिट्टी से सम्बन्धित ...., ... तथा ....के विभिन्न आयामों का अध्ययन किया जाता है।
3. लाह कीटों का अध्ययन .... विज्ञान में किया जाता है।
4. बायोटेक्नोलॉजी.. की शाखा है।
5. किसानों तक तकनीकी ज्ञान पहुँचाने के लिए .... का अध्ययन आवश्यक है।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

निम्न की परिभाषा लिखें :–

1. कृषि अभियंत्रण
2. उद्यान
3. पौधा रोग
4. कृषि अर्थशास्त्र
5. शस्य विज्ञान

*****

1.3 भारत में राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय कृषि संस्थान

मानव जन्म के साथ ही संस्कृति का उदय हुआ। संस्कृति ही राष्ट्र की उन्नति एवं प्रगति का मापदंड है। भारतीय संस्कृति का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। ऋग्वेद में बैल द्वारा चालित लकड़ी के हल से जोतकर बोये हुए बीज और उससे उत्पन्न अन्न को "सस्य" कहा गया है।

वर्ष 1880 में भुखमरी आयोग की अनुशंसा पर कृषि विभाग का गठन हुआ। 1890 में रॉयल कमिशन ऑन एग्रिकल्चर के सलाहकार डॉ0 जे.ए. वोयलकर ने आधुनिक कृषि की नींव रखी। इनकी अनुशंसा के आलोक में 1892 ई0 में इम्पीरियल कृषि रसायनविद्, 1901 ई0 में इम्पीरियल कवक रोगविज्ञानी (Mycologist) तथा 1903 ई0 में इम्पीरियल कीट विज्ञानी की नियुक्तियाँ हुईं। देश की कमजोर कृषि के कारण होने वाले भुखमरी की भयंकर घटनाओं के निवारण के लिए कृषि अनुसंधान एवं कृषि शिक्षा पर विशेष ध्यान देने के लिए भारत के विभिन्न स्थानों पर सन् 1905–08 में छः कृषि महाविद्यालय क्रमशः सबौर, कानपुर, नागपुर, कोयम्बटूर, पुणे एवं लायलपुर (पश्चिम पाकिस्तान) में खोले गये। साथ ही देश का प्रथम कृषि अनुसंधान संस्थान 1905 में पूसा, समस्तीपुर, बिहार में स्थापित हुआ, जो 1934 के भूकंप में क्षतिग्रस्त होने के कारण 1936 में नई पूसा, नई दिल्ली में पुनः स्थापित हुआ, जिसे देश की आजादी के बाद भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (IARI) के नाम से जाना गया।

रॉयल कमिशन ऑन एग्रिकल्चर की अनुशंसा पर 16 जुलाई, 1929 को इंपीरियल कौन्सिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च (Imperial Council of Agricultural Research) की स्थापना पूसा में हुई। इसकी स्थापना के बाद देश में क्रमबद्ध कृषि शिक्षा एवं अनुसंधान तथा प्रसार का कार्य प्रारंभ हुआ। इसका उद्देश्य कृषि, पशुपालन, मत्स्यकी व अन्य कृषि विषयों पर आधारित देश के प्रमुख एवं दूर दराज के क्षेत्रों के लिए प्रायोगिक एवं मौलिक अनुसंधान को विकसित करना था। आज यह विश्व के प्रमुख शोध एवं प्रसार कार्य करने वाले संस्थान के रूप में चिह्नित हुआ है, जिसके नियंत्रणाधीन 48 राष्ट्रीय अनुसंधान संस्थान, 5 राष्ट्रीय संस्थान (डीम्ड विश्वविद्यालय के तौर पर), 33 केन्द्रीय कृषि अनुसंधान केन्द्र, 24 कृषि अनुसंधान संस्थान, 91 अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना तथा 630 कृषि विज्ञान केन्द्र कार्यरत है। पूरे देश में कृषि के शिक्षण, अनुसंधान एवं प्रसार कार्यों से संबंधित नीति निर्धारण एवं उनके आधारभूत संरचना के विकास, साथ ही आर्थिक सहयोग की संपूर्ण जिम्मेवारी कौंसिल की है। कौंसिल देश के किसानों एवं कृषि पर आधारित चुनौतियों एवं समस्याओं के समाधान के लिए विगत आठ दशकों से कृषि मंत्रालय, भारत सरकार तथा राज्यों के कृषि विश्वविद्यालयों के साथ परस्पर सहयोग एवं सहभागिता के आधार पर निरन्तर कार्य कर रही है। देश की आजादी के पश्चात् इसे इण्डियन कौंसिल ऑफ एग्रिकल्चर रिसर्च (आई.सी.ए.आर.) के नाम से जाना जाता है।

भारत के प्रमुख कृषि एवं पशु चिकित्सा विश्वविद्यालय (Agricultural and Veterinary University)

नाम	स्थापना वर्ष	संक्षिप्त नाम
कुल राज्य कृषि विश्वविद्यालय (SAU's)-49		
आचार्य एन.जी. रंगा कृषि विश्वविद्यालय, राजेन्द्र नगर, हैदराबाद, (आन्ध्र प्रदेश)	1965	ANGRAU(पूर्व नाम APAU)
आनन्द कृषि विश्वविद्यालय, आनन्द (गुजरात)	2004	AAU (पूर्व नाम GAU)
असम कृषि विश्वविद्यालय, जोरहट (असम अब असोम)	1969	AAU
राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर (बिहार)	1970	RAU
बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, कांके, रांची (झारखण्ड)	1980	BAU
चौधरी चरणसिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)	1970	CCSHAU
कृषि विज्ञान विश्वविद्यालय, बंगलौर (कर्नाटक)	1965	UAS
कृषि विज्ञान विश्वविद्यालय, धारवाड़ (कर्नाटक)	1987	UAS
जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश)	1964	JNKVV
इंन्दिरा गाँधी कृषि विश्वविद्यालय, कृषि नगर, रायपुर (छत्तीसगढ़)	1987	IGKVV
डॉ0 बाला साहिब सावंत कोंकण कृषि विद्यापीठ, दपोली (महाराष्ट्र)	1972	KKV
महात्मा फूले कृषि विद्यापीठ, राहुरी, अहमदनगर (महाराष्ट्र)	1965	MPKV

मराठवाड़ा कृषि विश्वविद्यालय, परभनी (महाराष्ट्र)	1972	MAU
उड़ीसा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर (उड़ीसा)	1962	OUAT
पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना (पंजाब)	1963	PAU
तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयम्बटूर (तमिलनाडु)	1972	TNAU
चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उत्तर प्रदेश)	1975	CSAUAT
गोविन्द वल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर (उत्तराखण्ड)	1960	GBPUAT (पूर्व नाम UPAU)
नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, फैजाबाद (उत्तर प्रदेश)	1976	NDUAT
विधान चन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, मोहनपुर, नादिया, कल्याणी (प. बंगाल)	1974	BCKVV
उत्तर बंग कृषि विश्वविद्यालय, पुडीवारी, कूच बिहार (प. बंगाल)	2001	UBKVV
बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर (बिहार)	2010	BAU
मध्य प्रदेश पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश)	2010	MPPCVV
यूनीवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चरल साइन्सेस, रायचूर (कर्नाटक)	2010	RUVASc
यूनीवर्सिटी ऑफ हॉर्टीकल्चरल साइन्सेस, बगलकोट (कर्नाटक)	2010	UASc
केरल वेटेरीनरी यूनीवर्सिटी, पूकोडी (केरल)	2010	UHSc
महाराष्ट्र पशु विज्ञान एवं मत्स्यकी विश्वविद्यालय, नागपुर (महाराष्ट्र)	1995	KVU
केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय (1)		
केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, इम्फाल (मणिपुर)	2000	MASc & FU
डीम्ड विश्वविद्यालय (Deemed-to-be Universities) स्तर प्राप्त कृषि संस्थान -5	1993	CAUI
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा रोड, नई दिल्ली		IARI
भारतीय पशु चिकित्सा विज्ञान अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर (उत्तर प्रदेश)	1936	IVRI
राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)	1936	NDRI
केन्द्रीय मत्स्य शिक्षा संस्थान, मुम्बई (महाराष्ट्र)		CIFE
इलाहाबाद कृषि संस्थान (अब कृषि विश्वविद्यालय), नया नाम — Sam Higginbottom University of Agriculture, Technology & Science, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)		AAI
केन्दीय विश्वविद्यालय, जिनमें Institute/ Faculty of Agriculture अलग से है — 04	1910	
अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़, (उत्तर प्रदेश)		AMU
बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)		BHU
विश्व भारती, शान्तिनिकेतन (प बंगाल)		
कृषि विज्ञान एवं ग्रामीण विकास विद्यालय, नागालैण्ड विश्वविद्यालय, मेदजीफेमा (नागालैण्ड)		

CMYK

प्रमुख राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान संस्थान/केन्द्र (National Agricultural Research Institute/Centres)

संक्षिप्त नाम	पूरा नाम	स्थापना वर्ष	स्थान (राज्य)
NAARM	नेशनल एकेडमी फॉर एग्रीकल्चरल रिसर्च एण्ड मैनेजमेंट	1976	राजेन्द्र नगर, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)
NBAGR	नेशनल ब्यूरो ऑफ एनीमल जेनेटिक रिसोर्सेज	1985	करनाल (हरियाणा)
NBFGR	नेशनल ब्यूरो ऑफ फिश जेनेटिक रिसोर्सेज	1983	इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)
NBPGR	नेशनल ब्यूरो ऑफ प्लांट जेनेटिक रिसोर्सेज	1976	नई दिल्ली (दिल्ली)
NBSSLUP	नेशनल ब्यूरो ऑफ स्वायल सर्वे एण्ड लैण्ड यूज प्लानिंग	1976	नागपुर (महाराष्ट्र)
NCAEPR	नेशनल सेन्टर ऑफ एग्रीकल्चरल इकोनोमिक्स एण्ड पॉलिशी रिसर्च	1991	नई दिल्ली (दिल्ली)
NDRI	नेशनल डेयरी रिसर्च इंस्टीट्यूट	1955	करनाल (हरियाणा)
NIAG	नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एनीमल्स जेनेटिक्स	1984	करनाल (हरियाणा)
NRCA	नेशनल रिसर्च सेन्टर फॉर एग्रो–फोरेस्ट्री	1988	झाँसी (उत्तर प्रदेश)
NRCC	नेशनल रिसर्च सेन्टर ऑन कैमल	1984	बीकानेर (राजस्थान)
NRCC	नेशनल रिसर्च सेन्टर फॉर सिट्रस	1985	नागपुर (महाराष्ट्र)
NRCG	नेशनल रिसर्च सेन्टर फॉर ग्राउण्डनट (मूँगफली)	1979	जूनागढ़ (गुजरात)
NRCIPM	नेशनल रिसर्च सेन्टर फॉर इन्टीग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेंट	1988	फरीदाबाद (हरियाणा)
NRCM	नेशनल रिसर्च सेन्टर फॉर मीट	1991	इज्जतनगर (उत्तर प्रदेश)
NRCMRT	नेशनल रिसर्च सेन्टर फॉर मशरूम रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग	1983	सोलन (हिमाचल प्रदेश)
NRCPB	नेशनल रिसर्च सेन्टर ऑन प्लांट बायोटैक्नोलोजी	1985	नई दिल्ली (दिल्ली)
NCS	नेशनल रिसर्च सेन्टर फॉर सोरघम	1987	हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)
NRCMAP	नेशनल रिसर्च सेन्टर फॉर मेडिसिनल एण्ड एरोमैटिक प्लाण्ट्स	-	आनन्द (गुजरात)
NRCOG	नेशनल रिसर्च सेन्टर फॉर ओनियन एण्ड गार्लिक	-	पुणे (महाराष्ट्र)
NRCS	नेशनल रिसर्च सेन्टर फॉर सोयाबीन	1987	इन्दौर (मध्य प्रदेश)
NRCWS	नेशनल रिसर्च सेन्टर फॉर वीड साइंस	1989	जबलपुर (मध्य प्रदेश)
NSI	नेशनल सुगर इंस्टीट्यूट	-	कानपुर (उत्तर प्रदेश)
NRCL	नेशनल रिसर्च सेन्टर फॉर लीची	-	मुजफ्फरपुर (बिहार)
NRC-M	नेशनल रिसर्च सेन्टर फॉर मशरूम		सोलन (हिमाचल प्रदेश)

प्रमुख केन्द्रीय कृषि अनुसंधान संस्थान (Central Agricultural Research Institutes) :-

संक्षिप्त नाम	पूरा नाम	स्थापना वर्ष	स्थान (राज्य)
CARI	सेन्ट्रल एग्रीकल्चरल रिसर्च इंस्टीट्यूट	1978	पोर्ट ब्लेयर (अण्डमान और निकोबार)
CARI	सेन्ट्रल एवियन रिसर्च इंस्टीट्यूट	1979	इज्जतनगर(उत्तर प्रदेश)
CAZRI	सेन्ट्रल एरिड जोन रिसर्च इंस्टीट्यूट	1959	जोधपुर (राजस्थान)
CFTRI	सेन्ट्रल फूड टैक्नोलॉजी रिसर्च इंस्टीट्यूट	-	मैसूर (कर्नाटक)
CIAE	सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चरल इन्जीनियरिंग	1955	भोपाल (मध्य प्रदेश)

CIBA	सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ ब्रैकिश वाटर एक्वाकल्चर	1987	चेन्नई (तमिलनाडु)
CICFRI	सेन्ट्रल इनलैण्ड कैप्चर फिशरीज रिसर्च इंस्टीट्यूट	1947	बैरकपुर (प. बंगाल)
CIFA	सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ फ्रेश वाटर एक्वाकल्चर	1987	भुवनेश्वर (उड़ीसा)
CIFT	सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ फिशरीज टैक्नोलॉजी	1957	कोचीन (केरल)
CISH	सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट फॉर सबट्रोपिकल हार्टीकल्चर	1984	लखनऊ (उत्तर प्रदेश)
CIMAP	सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिसिनल एण्ड एरोमैटिक प्लाण्ट्स (under CSIR)	-	लखनऊ (उत्तर प्रदेश)
CIRB	सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट फॉर रिसर्च ऑन बफैलोज	1985	हिसार (हरियाणा)
CIRG	सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट फॉर रिसर्च ऑन गोट्स	1979	मखदूम (उत्तर प्रदेश)
CPCRI	सेन्ट्रल प्लान्टेशन क्रॉप्स रिसर्च इंस्टीट्यूट	1970	कासरगोड (केरल)
CPRI	सेन्ट्रल पोटैटो रिसर्च इंस्टीट्यूट	1949	शिमला (हिमाचल प्रदेश)
CRIDA	सेन्ट्रल रिसर्च इंस्टीट्यूट फॉर ड्राईलैण्ड एग्रीकल्चर	1985	हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)
CRIJAF	सेन्ट्रल रिसर्च इंस्टीट्यूट फॉर जूट एण्ड एलाइड फाइबर्स	1953	बैरकपुर (प. बंगाल)
CRRI	सेन्ट्रल राइस रिसर्च इंस्टीट्यूट	1946	कटक (उड़ीसा)
CSSRI	सेन्ट्रल स्वायल सैलिनिटी रिसर्च इंस्टीट्यूट	1969	करनाल (हरियाणा)
CTCRI	सेन्ट्रल ट्यूबर क्रॉपस् रिसर्च इंस्टीट्यूट	1963	तिरूवनन्तपुरम (केरल)
CTRI	सेन्ट्रल टोबैको रिसर्च इंस्टीट्यूट	1947	राजमुन्दरी (आन्ध्र प्रदेश)
CPCRI	सेन्ट्रल प्लान्टेशन क्रॉप रिसर्च इंस्टीट्यूट	-	कासरगोड (केरल)
NIAEM	नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चरल एक्सटेंशन मैनेजमेन्ट	1987	हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)

प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान संस्थान (International Agricultural Research Institutes) :-

संक्षिप्त नाम	अनुसंधान केन्द्र का नाम	स्थान / देश	स्थापना वर्ष	किससे संबंधित
CGIAR	कन्सल्टेटिव ग्रुप ऑन इन्टरनेशनल एग्रीकल्चरल रिसर्च	संयुक्त राज्य अमरीका	1971	सामान्य कृषि विज्ञान अनुसंधान
CIAT	सैन्ट्रो इन्टरनेशनल दि एग्रीकल्चर ट्रीपीकल	कैली (कोलम्बिया)	1967	कसाव, वीन्स सुधार
CIMMYT	सैन्ट्रो इन्टरनेशनल दि मेजरोमेंटो दि मेजट्राइगो	एल बटान (मेक्सिको)	1966	गेहूँ, मक्का
CIP	इन्टरनेशनल सेन्टर फॉर पोटैटो	लिमा (पेरू)	1971	आलू
IBPGR	इन्टरनेशनल ब्यूरो फॉर प्लान्ट जेनेटिक रिसोर्सेज	रोम (इटली)	1974	जड़ एवं कंद फसलों का संग्रह, कृषि एवं वानिकी के लिए प्लान्ट जैनेटिक रिसर्च
ICARDA	इन्टरनेशनल सेन्टर फॉर एग्रीकल्चरल रिसर्च इन ड्राई एरियाज	एलेफो (सीरिया)	1976	मसूर ....
ICRISAT	इन्टरनेशनल क्रॉप रिसर्च इंस्टीट्यूट फॉर द सेमी-एरिड ट्रॉपिक्स	पटनचेरू, हैदराबाद (भारत)	1972	ज्वार, बाजरा, मूँगफली, चना, अरहर

IITA	इन्टरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ ट्रोपीकल एग्रीकल्चर	इबादान (नाइजीरिया)	1968	ग्रेन लैग्यूम्स, जड़ एवं कंद फसलें
ILCA	इन्टरनेशनल लाइवस्टॉक सेन्टर ऑफ अफ्रीका	आदिस अबाबा (इथोपिया)	1974	पशुधन विकास
IRRI	इन्टरनेशनल राइस रिसर्च इंस्टीट्यूट	लॉस बानोस (फिलीपीन्स)	1960	धान अनुसंधान
WARDA	वेस्ट अफ्रीकन राइस डेवलपमेन्ट एसोसिएशन	मौनरोविया (लाइबेरिया)	1971	धान का विकास

प्रमुख कृषि अनुसंधान संस्थान (Agricultural Research Institutes) :-

संक्षिप्त नाम	पूरा नाम	स्थापना वर्ष	स्थान (राज्य)
IARI	इण्डियन एग्रीकल्चरल रिसर्च इंस्टीट्यूट	1905	नई दिल्ली (पूर्व में 1935 तक पूसा बिहार में था)
IASRI	इण्डियन एग्रीकल्चरल स्टेटिस्टिक्स रिसर्च इंस्टीट्यूट	1959	पूसा, नई दिल्ली
IGFRI	इण्डियन ग्रासलैण्ड एण्ड फॉडर रिसर्च इंस्टीट्यूट	1962	झाँसी (उत्तर प्रदेश)
IIHR	इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ हॉर्टीकल्चरल रिसर्च	1967	हैसरघट्टा, बंगलौर
IIPR	इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ पल्स रिसर्च	1984	कानपुर (उत्तर प्रदेश)
IISR	इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ सुगरकेन रिसर्च	1952	लखनऊ (उत्तर प्रदेश)
IVRI	इण्डियन वेटनरी रिसर्च इंस्टीट्यूट	1984	इज्जतनगर (उत्तर प्रदेश)
SBI	सुगरकेन ब्रीडिंग इंस्टीट्यूट	1912	कोयम्बटूर (तमिलनाडु)
IISR	इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ स्पाइस रिसर्च	1975	कालीकट (केरल)
IIVR	इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ वेजीटेबल रिसर्च	-	वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

प्रश्न कोष

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. आई.सी.ए.आर. की स्थापना कब हुई ?

   (i) 1880 (ii) 1905 (iii) 1929 (iv) 1970

2. भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में कब स्थानांतरित हुआ ?

   (i) 1905 (ii) 1908 (iii) 1934 (iv) 1936

3. देश में वर्तमान समय में कुल कितने कृषि विश्वविद्यालय कार्यरत हैं ?

   (i) 48 (ii) 49 (iii) 50 (iv) 91

4. देश का पहला कृषि विश्वविद्यालय कहाँ स्थित है ?

   (i) पूसा (ii) नई दिल्ली (iii) पंतनगर (iv) सबौर

5. बिहार में राष्ट्रीय स्तर के कितने अनुसंधान केन्द्र हैं ?

   (i) एक (ii) दो (iii) तीन (iv) चार

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. बी.एच.यू. वाराणसी में कृषि की पढ़ाई होती है ? हाँ / नहीं
2. देश में चार केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय है ? हाँ / नहीं
3. राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान पूसा, नई दिल्ली में है ? हाँ / नहीं
4. सेन्ट्रल राईस रिसर्च इंस्टीट्यूट कोलकाता में है ? हाँ / नहीं
5. सेन्ट्रल पोटैटो रिसर्च इंस्टीट्यूट कटक में है ? हाँ / नहीं

लघु उत्तरीय प्रश्न

इनका पूरा नाम लिखें ।

1. ICRISAT
2. IRRI
3. RAU
4. IARI
5. NRCL

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. आधुनिक कृषि के विकास पर बिहार के संदर्भ में प्रकाश डालें।
2. आजादी पूर्व कृषि अनुसंधान में हुई प्रगति का वर्णन करें।
3. बिहार में आजादी से पूर्व कृषि विकास का संक्षिप्त विवरण दें।
4. आई.सी.ए.आर. की स्थापना का इतिहास लिखें।

*****

1.4. भारत एवं बिहार के कृषि जलवायु क्षेत्र (Agroclimatic zone)

कृषि जलवायु क्षेत्र (Agroclimatic zone)

कृषि जलवायु क्षेत्र भूमि की एक इकाई है, जिनकी अधिकांश जलवायुवीय दशाओं में समानता रहती है ताकि एक निश्चित फसलों एवं प्रभेदों के समूहों के लिए वह अनुकूल होती है। (एफ.ए.ओ., 1983)

Agro-climatic zone is a land unit in terms of major climates suitable for a certain range of crops and cultvars (FAO, 1983).

कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्र (Agro-Ecological Zones/Regions)

कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्र कृषि जलवायु क्षेत्र की तरह ही पृथ्वी की सतह पर भूमि की एक इकाई है, जिसका निर्धारण सूक्ष्म जलवायुवीय दशाओं जैसे जलवायु, मिट्टी, उपलब्ध जल क्षमता एवं फसलों के उगने की अवधि के चलते बनी विभिन्न पारिस्थितिकियों पर की गयी है।

"Agro-ecological region is an area of the earth's surface characterized by distinct echological responses to micro-climates expressed by soils, vegetation, fauna and aquatic system".

कृषि जलवायु क्षेत्रीय योजना (Agroclimatic Regional Planning)

कृषि जलवायु क्षेत्र के समुचित विकास हेतु भारत में कृषि जलवायु क्षेत्रीय योजना (Agroclimatic Regional Planning) का शुभारम्भ योजना आयोग के द्वारा सन् 1988 ई0 में सातवीं पंचवर्षीय योजना में हुआ। इसका मुख्य उद्देश्य क्षेत्रीय संसाधनों का वैज्ञानिक ढंग से प्रबंधन करना है ताकि बढ़ती हुई 5 Fs (Food, Feed, Fodder, Fibre व Fuel) की आवश्यकताओं की पूर्ति, उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों एवं पर्यावरण स्तर को बगैर कुप्रभावित करके किया जा सके।इस उद्देश्य को सम्पूर्ण सोच 'Holistic approach' कहा जाता है, जिसमें फसल उत्पादन एवं सम्बन्धित क्रियाओं (Allied activities) का उचित मिलाप (Interaction) किया जाए। अतः, इस क्षेत्रीय योजना को संतुलित क्षेत्रीय वृद्धि के लिए कृषि जलवायु कारकों यथा, वर्षापात, तापमान, मिट्टी की किस्में, जल संसाधन, धरातल (Topography), समुद्र तल से ऊँचाई, अक्षांश, फसल प्रणाली, कृषि प्रणाली, पशु, प्राकृतिक वनस्पति आदि के आधार पर लागू की गयी ताकि ग्रामीण क्षेत्र की आमदनी बढ़े तथा क्षेत्रीय भिन्नताएं कम से कम हों।

कृषि जलवायु क्षेत्रीय योजना के मुख्य उद्देश्य (Objectives)

1. विभिन्न क्षेत्रों (Zones) की क्षमता (Potential) एवं भविष्य (Prospects) का सही विश्लेषण एवं मूल्यांकन करना।
2. राष्ट्रीय स्तर पर मुख्य उपयोगी वस्तुओं की वृहद माँग एवं उपलब्धता के मध्य संतुलन कायम रखना।
3. उत्पादकों को अधिकतम शुद्ध लाभ प्रदान कराना।
4. भूमिहीन श्रमिकों के लाभार्थ अतिरिक्त रोजगार के अवसर विकसित करना।
5. अपने उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों मुख्य रूप से भूमि, जल एवं वानिकी के वैज्ञानिक एवं टिकाऊ (Sustainable) उपयोग हेतु भविष्य के लिए दीर्घकालीन ढाँचा तैयार करना।

भारत के कृषि जलवायु क्षेत्र

हमारे देश का कुल भौगोलिक क्षेत्र करीब 329 मिलियन हेक्टेयर है, जिसमें करीब 143 मिलियन हेक्टेयर में खेती की जा रही है। विभिन्न स्रोतों से सिंचाई की सुविधा मात्र 33 प्रतिशत क्षेत्र में ही है।

योजना आयोग ने देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र को जल की बाहुल्य (Water surplus), जल की कमी (Water defecit) तथा फसल प्रणाली (Cropping system) के आधार पर निम्नलिखित 15 कृषि जलवायु क्षेत्रों (Agroclimatic zones/Regions) में विभक्त किया है–

1. पश्चिमी हिमालयन क्षेत्र (Western Himalayan Region)
2. पूर्वी हिमालयन क्षेत्र (Eastern Himalayan Region)
3. निचली गंगा का मैदानी क्षेत्र (Lower Gangetic Plains Region)
4. मध्य गंगा का मैदानी क्षेत्र (Middle Gangetic Plains Region)
5. ऊपरी गंगा का मैदानी क्षेत्र (Upper Gangetic Plains Region)
6. पार–गंगा का मैदानी क्षेत्र (Trans- Gangetic Plains Region)
7. पूर्वी पठारी एवं पर्वतीय क्षेत्र (Eastern Plateau & Hills Region)
8. मध्यवर्ती पठारी एवं पर्वतीय क्षेत्र (Central Plateau & Hills Region)
9. पश्चिमी पठारी एवं पर्वतीय क्षेत्र (Western Plateau & Hills Region)
10. दक्षिणी पठारी एवं पर्वतीय क्षेत्र (Southern Plateau & Hills Region)
11. पूर्वी तटीय मैदानी एवं पर्वतीय क्षेत्र (East coast Plains & Hill Region)
12. पश्चिमी तटीय मैदानी एवं घाट क्षेत्र (West coast Plains & Ghat Region)
13. गुजरात मैदानी एवं पर्वतीय क्षेत्र (Gujrat Plains & Hill Region)
14. पश्चिमी सूखा क्षेत्र (Western Dry Region)
15. प्रायःद्वीप क्षेत्र (Island Region)

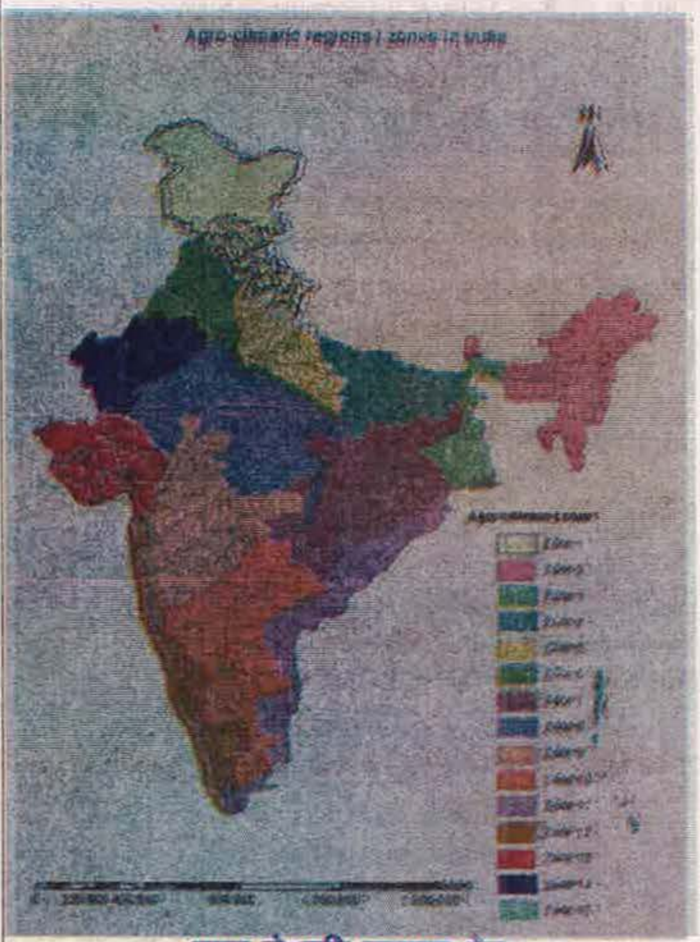

भारत के कृषि जलवायु क्षेत्र

बाद में यह महसूस किया गया कि यद्यपि ये 15 क्षेत्र वृहद् रूप से कृषि जलवायु दशाओं को दर्शाते हैं, लेकिन यदि सूक्ष्म विविधताओं को ध्यान में रखें तो निश्चय ही वृहद् योजना तैयार करने में ये उपर्युक्त वृहद् क्षेत्र सही रूप से समानता (Homogeneity) नहीं दर्शाएँगे। इन सीमाओं (Limitations) को ध्यान में रखते हुएं इन 15 क्षेत्रों को वहाँ की विशेष भूमि, धरातल, जलवायु एवं फसल पद्धतियों के अनुसार पुनः उपक्षेत्रों (sub zones) में बाँटा गया। उपक्षेत्रों के रेखांकन (demarcation) हेतु भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (Indian CouncilofAgricultural Research) ने राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान परियोजना (NARP) के 127 क्षेत्रों को भी लिया। इस प्रकार 15 कृषि जलवायु क्षेत्र को पुनः 72 उपक्षेत्रों (sub zones) तथा 436 जिलों में विभाजित किया गया है।

भारत के कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्र

इसका वर्गीकरण फसल की वृद्धि काल (growth period), वर्षापात (rainfall) / उपलब्ध जल क्षमता (Available Water Capacity), मिट्टी (soil) तथा जलवायु (climate) के आधार पर किया गया है।

भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् द्वारा भारत को कुल 20 कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्र (Agro-Ecological Regions/Zones) में बांटा गया है। जिन्हें पुनः 60 उपक्षेत्रों (Agro Echological Sub Regions-AESR) में विभक्त किया गया है।

बिहार के कृषि जलवायु क्षेत्र (Agroclimatic zone)

बिहार राज्य का कुल भौगोलिक क्षेत्र करीब 94.2 लाख हेक्टेयर है, जिसमें करीब 56.4 लाख हेक्टेयर में खेती की जा रही है। जबकि 35.2 लाख हेक्टेयर भूमि **में विभिन्न स्रोतों से** सिंचाई सुविधा उपलब्ध है। बिहार की जलवायु गर्म शुष्क (tropical) एवं सर्द कटिबन्ध/नम (sub humid) है। **यहाँ वर्षा जल एवं भूमि जल** (ground water) पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है,तथा यहाँ की मिट्टियाँ काफी उपजाऊ है।

राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान परियोजना के अन्तर्गत विश्वविद्यालय द्वारा **इस राज्य को मृदा, वर्षापात, तापक्रम तथा फसल पद्धति (cropping pattern) के आधार पर तीन कृषि जलवायु क्षेत्रों में** विभाजित किया गया है। **जो इस प्रकार हैं –**

1. कृषि **जलवायु** क्षेत्र I –
   उत्तर पश्चिमी जलोढ़ मैदान
2. कृषि जलवायु क्षेत्र II–
   उत्तर पूर्वी जलोढ़ मैदान
3. कृषि जलवायु क्षेत्र III–
   दक्षिणी बिहार जलोढ़ मैदान

वर्ग
3. को पुनः दो वर्गों में बांटा गया है:–

(क) कृषि जलवायु क्षेत्र III 'ए'
(दक्षिणी पूर्वी बिहार **जलोढ़ मैदान**)

(ख) **कृषि जलवायु क्षेत्र III 'बी'
(दक्षिणी पश्चिमी बिहार जलोढ़ मैदान)**

बिहार के कृषि जलवायु क्षेत्र

तालिका विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों के अन्तर्गत जिलों तथा फसलों की सूचि :–

क्षेत्र संख्या	सम्बन्धित जिले	मुख्य फसलें
I	पश्चिमी चम्पारण, पूर्वी चम्पारण, गोपालगंज, सीवान, सीतामढ़ी, शिवहर, दरभंगा, मधुबनी, मुजफ्फरपुर, सारण, वैशाली, समस्तीपुर और बेगूसराय (13)	**धान, गेहूँ, मक्का,** दलहन (अरहर), तिलहन, ईख, आलू , तम्बाकू , उद्यानिक फसलें जैसे–लीची, आम, केला, मखाना, सिंघाड़ा
II	किशनगंज, अररिया, पूर्णिया, कटिहार, सहरसा, सुपौल, मधेपुरा, खगड़िया तथा भागलपुर जिले के गंगा के उत्तरी भाग के नवगछिया क्षेत्र (08)	**धान, गेहूँ, मक्का,** गरमा मूंग राई/सरसों, जूट, उद्यानिक फसलें जैसे–आम, बेल, केला, पपीता, कद्दू वर्गीय सब्जी, मिर्च, हल्दी,
III 'ए'	शेखपुरा, लखीसराय, जमुई, मुंगेर, भागलपुर और बांका (06)	**धान, गेहूँ, मक्का, चना,** मसूर, गरमा मूंग तीसी, राई/सरसों तथा उद्यानिक फसलें जैसे–आम, अमरूद, केला, बेल, कटहल, परवल, आलू, प्याज, मिर्च
III 'बी'	नालन्दा, नवादा, पटना, गया, जहानाबाद, अरबल, रोहतास, औरंगाबाद, भभूआ, भोजपुर और बक्सर (11)	**धान, गेहूँ,** मक्का, चना, सूर्यमुखी तथा उद्यानिक फसलें जैसे–आम, प्याज, आलू, मिर्च

1. **कृषि जलवायु क्षेत्र I –** बिहार के कुल 38 जिलों में इस कृषि जलवायु क्षेत्र के अन्दर 13 जिले आते हैं। इस कृषि जलवायु क्षेत्र की मिट्टियाँ बलुआही दोमट से दोमट संरचना की हैं, पी0 एच0 मान 6.5 से 8.4, यहाँ तक की 10.0 है। यहाँ की मुख्य फसल प्रणाली धान पर या मक्का पर आधारित है।

2. **कृषि जलवायु क्षेत्र II–** इस कृषि जलवायु क्षेत्र के अन्दर 08 जिले हैं। इस कृषि जलवायु क्षेत्र की मिट्टियों की संरचना दोमट बलुआही से केवाल दोमट होती है। अधिकांश क्षेत्रों में पी0 एच0 का मान 6.5 से 7.8 के बीच पाया जाता है। यहाँ के उत्तरी–पूर्वी इलाकों के कुछ स्थानों (पूर्णियाँ) पर मिट्टियाँ हल्की अम्लीय भी पायी गयी है, जिसका पी0 एच0 माप 5.2 से 5.6 के बीच देखा गया है। इस कृषि जलवायु क्षेत्र की मुख्य फसल प्रणाली धान पर तथा जूट पर आधारित है। इस क्षेत्र का राज्य के कुल जूट उत्पादन में 90 प्रतिशत से अधिक का योगदान है।

3. **कृषि जलवायु क्षेत्र III –** इस कृषि जलवायु क्षेत्र के अंदर कुल 17 जिले आते हैं। यहाँ की जलवायु क्षेत्र I और II से ज्यादा शुष्क है। इस कृषि जलवायु क्षेत्र की मिट्टियों की संरचना बलुआही दोमट से दोमट है। कुछ क्षेत्रों में केवाल–दोमट मिट्टियाँ भी देखी गयी है। इनकी मिट्टियों में पी0एच0 का मान 6.8 से 8.0 के बीच पाया जाता है। धान क्षेत्रों की मिट्टियों में जिंक तथा सल्फर की कमी है। इस कृषि जलवायु क्षेत्र में दियारा एवं टाल भूमि काफी बड़े भू–भाग में है। दियारा क्षेत्र वह भूभाग है, जो नदी के दोनों किनारों पर बरसात में जल से प्लावित रहता है तथा यहाँ की मिट्टियाँ हल्की से मध्यम संरचना की होती है। टाल क्षेत्र, दियारा क्षेत्र के प्राकृतिक बाँधों को पारकर, कटोरीनुमा भूभाग है, जो बरसात में जल से प्लावित रहता है एवं यहाँ की मिट्टियाँ भारी संरचना की होती है। इस कृषि जलवायु क्षेत्र की मुख्य फसल प्रणाली धान पर आधारित है। टाल क्षेत्रों में दलहनी फसल, चना और मसूर की खेती वृहत पैमाने पर मुख्य फसल के रूप में की जाती है। जबकि दियारा क्षेत्रों की मुख्य फसलें मक्का, गेहूँ तथा परवल हैं।

इस कृषि जलवायु क्षेत्र को पुनः दो वर्गों में बांटा गया है:–

(क) कृषि जलवायु क्षेत्र III 'ए' (दक्षिणी पूर्वी बिहार जलोढ़ मैदान)

इस वर्ग के अंदर कुल 06 जिले आते हैं। टाल एवं दियारा का काफी बड़ा भू–भाग गंगा के दक्षिण छोर पर है। गंगा से दूर दक्षिणी क्षेत्रों की मिट्टियाँ पुरानी जलोढ़ है, जहाँ खरीफ मौसम की प्रमुख फसल धान है। उसके दक्षिण में पहाड़ी क्षेत्र (Foot hills of mountation ranges) की मिट्टियाँ लेटेराईट एवं लैटेरिटिक है। यहाँ असिंचित क्षेत्रों में खरीफ में अरहर, अरण्डी, मक्का, मूंगफली तथा तिल बोयी जाती है तथा रबी में या तो जमीन को परती रखी जाती है या गेहूँ की बोआई की जाती है।

(ख) कृषि जलवायु क्षेत्र III 'बी' (दक्षिणी पश्चिमी बिहार जलोढ़ मैदान)

इस कृषि जलवायु क्षेत्र के अन्दर बिहार के कुल 11 जिले आते हैं। इन कृषि जलवायु क्षेत्रों की अधिकांश मिट्टियाँ पुरानी जलोढ़ है, जिसकी संरचना भारी केवाल है। इन मिट्टियों में खरीफ मौसम में धान की खेती की जाती है, धान को काटने के बाद रबी में गेहूँ की फसल लगायी जाती है। पटना एवं नवादा के गंगा से सटे इलाकों की भूमि दियारा एवं टाल है। कैमूर के पहाड़ी क्षेत्रों (Foot hills of mountation ranges) की मिट्टियों में जल धारण क्षमता काफी कम है, वहाँ खरीफ मौसम में मोटे अनाज, अरण्डी तथा कुछ तेलहनी फसलों की खेती होती है।

तालिका–विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों का विस्तृत विवरण निम्न तालिका में दिया गया है :

कृषि जलवायु क्षेत्र	भौगोलिक रकवा (लाख हे0)	शुद्ध खेती का रकवा(लाख हे0)	फसल तीव्रता (प्रतिशत)	शुद्ध सिंचित रकवा (लाख हे0)	औसत वर्षापात (मि. मी.)
I	32.22 (34.20 %)	22.50	145.0	16.76 (74.5 %)	1235
II	21.26 (22.57 %)	11.78	152.0	2.47 (21.0 %)	1382
III 'ए'	10.99 (11.67 %)	4.95	131.0	2.71 (54.7 %)	1150
III 'बी'	29.73 (31.56 %)	17.15	135.0	13.26 (77.3 %)	1097
कुल	**94.20** (100 %)	**56.38**	**142.0**	**35.2** (62.4 %)	**1216**

नोटः– सिंचित क्षेत्रों का प्रतिशत शुद्ध खेती के क्षेत्र से ज्ञात किया गया है। कृषि जलवायु क्षेत्र III 'ए' के विभिन्न जिलों में 16 प्रतिशत (जमुई) से करीब 86 प्रतिशत (शेखपुरा) तक का अन्तरं पाया गया है ।

प्रश्न कोष

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. बिहार को कितने कृषि जलवायु क्षेत्र में विभाजित किया गया है ?
   (i) 5 (ii) 4 (iii) 3 (iv) 6
2. बिहार के किस कृषि जलवायु क्षेत्र में सर्वाधिक वर्षा होती है ?
   (i) जोन–I (ii) जोन–II (iii) जोन–III ए (iv) जोन–III बी
3. बिहार में सर्वाधिक फसल तीव्रता वाला जलवायु क्षेत्र इनमें से कौन है ?
   (i) जोन–I (ii) जोन–II (iii) जोन–III ए (iv) जोन–III बी.
4. योजना आयोग द्वारा पूरे देश को कितने कृषि जलवायु क्षेत्रों में विभक्त किया गया है ?
   (i) 10 (ii) 15 (iii) 20 (iv) 25
5. आई.सी.ए.आर. द्वारा भारत को कितने कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्र में विभक्त किया गया है ?
   (i) 10 (ii) 15 (iii) 20 (iv) 25

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. क्या पूरे देश को वर्षापात के आधार पर कृषि जलवायु क्षेत्रों में विभक्त किया गया है ? हाँ/नहीं
2. कृषि जलवायु क्षेत्रीय योजना का एक मात्र उद्देश्य वृक्षारोपण है ? हाँ/नहीं
3. बिहार में सर्वाधिक वर्षा पटना जिला में होती है ? हाँ/नहीं
4. आई.सी.ए.आर. ने पूरे देश को 60 उपक्षेत्रों में विभक्त किया है ? हाँ/नहीं
5. भौगोलिक रकबा के आधार बिहार का कृषि जलवायु क्षेत्र जोन–III बी. सबसे बड़ा है ? हाँ/नहीं

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कृषि जलवायु क्षेत्र को एफ.ए.ओ. ने कैसे परिभाषित किया है ?
2. 5 Fs से क्या समझते हैं ?
3. बिहार के कृषि जलवायु क्षेत्रों का नाम लिखें।
4. आई.सी.ए.आर. ने देश के कृषि जलवायु क्षेत्रों को कितने मुख्य एवं उप क्षेत्रों में विभक्त किया है ?
5. कृषि जलवायु क्षेत्रीय योजना की संक्षिप्त जानकारी दें।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. कृषि जलवायु क्षेत्र को परिभाषित करें ।
2. भारत को कितने कृषि जलवायु क्षेत्र में बाँटा गया है ? उनके नामों को लिखें ।
3. कृषि जलवायु क्षेत्रीय योजना के मुख्य उद्देश्य को लिखें ।
4. कृषि परिस्थितिकी क्षेत्र के वर्गीकरण में किन बातों को आधार बनाया गया है ?
5. भारत के किन–किन कृषि परिस्थितिकी क्षेत्रों में बिहार राज्य का क्षेत्र पड़ता है, उन कृषि परिस्थितिकी क्षेत्रों की विवरणी को लिखें ।

******

1.5 मौसम एवं कृषि

कृषि का मौसम के साथ अटूट सम्बन्ध है। अनुकूल या प्रतिकूल मौसमों का फसलोत्पादन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। पौधों के पुष्पण या दानों के भराव (grain filling) के समय यदि बादल रहित खुला मौसम और सामान्य तापमान रहता है, तो दाने अधिक संख्या में बनेंगे और पुष्ट होंगे। उसी प्रकार पक रही फसलों पर यदि ओले के साथ वृष्टि होती है, तो सारी फसल नष्ट हो जा सकती है। अतएव कृषि की सफलता मौसम की अनुकूलता का द्योतक है।

''किसी स्थान विशेष एवं समय पर वायुमंडल की स्थिति को मौसम कहते हैं ''

"Weather is the state of atmosphere at a particular place and time"

वायुमंडल की स्थिति के परिवर्तनों को जिन बातों पर आँका जाता है, उन्हें हम मौसम के तत्त्व के नाम से जानते हैं।

जब हम मौसम की बात करते हैं तो वह एक छोटी सी जगह जैसे कुछ गाँव या कुछ वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र की बात, एक छोटी अवधि जैसे कुछ घंटे या एक दो दिनों के संदर्भ में, होती है, क्योंकि मौसम थोड़ी–थोड़ी देर में बदल सकता है। जैसे – अभी धूप है पर अचानक वर्षा हो सकती है। आर्द्र नौसम अचानक तेज हवा में परिवर्तित हो जा सकता है। थोड़ी–थोड़ी दूरी पर मौसम बदला–बदला सा हो सकता है। कहीं धूप है तो कहीं छाया। कहीं वर्षा हो रही है तो कुछ दूर पर साफ मौसम हो सकता है।

किसी स्थान की जलवायु भी वस्तुतः उस स्थान के मौसम पर ही आधारित होती है। परन्तु यह आकलन स्थान विशेष के औसत मौसम पर आधारित होता है, जो थोड़ी लम्बी अवधि तक का औसत होता है। अर्थात् जलवायु किसी स्थान विशेष के मौसम की औसत स्थिति है (Climate is the average state of weather of a place)। जलवायु के लिए बड़े क्षेत्रों जैसे जिला, राज्य, देश या महादेश का आकलन अपेक्षाकृत लम्बी अवधि के लिए जैसे महीना, ऋतु या वर्षभर के लिए किया जाता है। मौसम तो क्षण–क्षण परिवर्तनशील है, पर जलवायु में कोई भी परिवर्तन आसानी से नहीं होता है। जलवायु के हल्के परिवर्तन में भी सैकड़ों या हजारों वर्ष लग सकते हैं।

मौसम का आकलन मौसम के तत्त्वों की स्थिति पर किया जाता है। मौसम के तत्त्व हैं –

1. तापमान	2. सूर्य का प्रकाश	3. आर्द्रता	4. वर्षा
5. वायु–दाब	6. चक्रवात	7. प्रति–चक्रवात	

1. तापमान

पौधों को अंकुरण, बढाव, प्रजनन एवं बीज निर्माण के लिए तापमान की एक खास स्थिति की आवश्यकता होती है। प्रत्येक फसल के पौधों के लिए उनके जीवन काल की क्रान्तिक (critical) अवस्थाओं में तापमान का एक विशेष स्तर, उसके लिए सर्वश्रेष्ठ (optimum) होता है। परन्तु पौधे तापमान के एक बड़े दायरे (range) तक में विकसित हो सकते हैं। पर सभी प्रकार के पौधों के लिए एक न्यूनतम एवं अधिकतम तापमान स्तर होता है, जिससे कम या अधिक तापमान होने पर पौधों का विकास पूर्णतः अवरुद्ध हो जाता है। तापमान एवं पौधों के विकास के बीच एक सशक्त तालमेल है, जिसके आधार पर वैज्ञानिकों ने माना है कि अपने जीवन काल में एक विशेष किस्म के पौधे को कुल कितने तापमान की आवश्यकता होगी। इसके लिए पौधे के जीवन काल के प्रत्येक दिन के अधिकतम एवं न्यूनतम तापमान का औसत निकाला जाता है तथा उसमें से आधार तापमान (base temperature) घटा दिया जाता है। इस प्रकार प्राप्त प्रतिदिन के तापमान को बीज के बोआई से लेकर फसल के परिपक्व होने के दिन तक जोड़ते जाते हैं। हर फसल के लिए एक आधार तापमान नीयत कर लिया जाता है। यह, वह न्यूनतम तापमान होता है, जिसके नीचे पौधों की वृद्धि बिल्कुल अवरुद्ध हो जाती है। इस प्रकार प्राप्त तापमान को Day Degree या Heat Unit का नाम दिया गया है।

$$\text{डे–डिग्री (Day Degree)} = \frac{\text{अधिकतम तापमान} + \text{न्यूनतम तापमान}}{2} - \text{आधार तापमान}$$

सामान्यतः वर्षा ऋतु एवं गरमा ऋतु की फसलों के लिए आधार तापमान 10°सें0. माना गया है और शीत कालीन फसलों के लिए 5°सें0। इस सूत्र में कई कमियाँ हैं, परन्तु फिर भी काफी हद तक फसलें इसके अनुरूप तैयार होती हैं।

तापमान के उपरोक्त प्रभाव के फलस्वरूप एक ही फसल और किस्म उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में कम दिनों में पक कर तैयार होती है, जबकि उसी किस्म को समशीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में पकने में बहुत ज्यादा समय लगता है। गेहूँ की जो किस्म बिहार राज्य में 120 से 130 दिनों में पकती है, वह पंजाब में पकने के लिए 155–160 दिन लेगी। उसी प्रकार उष्णकटीबंधीय क्षेत्रों में एक वर्ष में एक खेत से 4 फसलें तक ली जाती है। जैसे–जैसे अक्षांश में वृद्धि होगी, एक वर्ष में काटी जा सकने वाली फसलों की संख्या घटती जाएगी। समशीतोष्ण कटिबन्ध के ऊँचे अक्षांश वाले क्षेत्रों में तथा ध्रुवीय क्षेत्रों में साल में बस एक फसल ली जा सकती है। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि आधार तापमान से कम तापमान होने पर पौधों की वृद्धि बिलकुल रूक जाती है, जो तापमान के बढ़ने पर ही पुनः शुरू हो सकती है।

कभी–कभी तापमान के ज्यादा कम हो जाने पर पौधों पर पाले का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इससे फसल काफी क्षतिग्रस्त हो सकती है। उसी प्रकार 45° सें0 से अधिक तापमान होने पर पौधों के परागण एवं दानों के पुष्ट होने की प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। परन्तु ऐसे कृषिगत क्षेत्र अपेक्षाकृत काफी कम है, जहाँ उच्च तापमान से महत्त्वपूर्ण क्षति पहुँचने की सम्भावना हो। तापमान का प्रभाव प्रकाश संश्लेषण की क्रिया पर भी पड़ता है। जब प्रकाश की तीव्रता कम हो तो तापमान का प्रकाश संश्लेषण पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु उच्च प्रकाश तीव्रता की स्थिति में तापमान की वृद्धि के साथ–साथ प्रकाश संश्लेषण भी बढ़ता है। यदि अन्य कारक स्थिर हों तो एक निश्चित तापमान तक जैसे–जैसे प्रकाश की तीव्रता बढ़ती है, उसी अनुपात में प्रकाश संश्लेषण भी बढ़ता है। प्रत्येक 10° सें0 तापमान बढ़ने पर प्रकाश संश्लेषण की दर पहले से दुगनी हो जाती है।

तापमान का कृषि के लगभग हर पहलू जैसे–मृदा निर्माण, कार्बनिक पदार्थों का अपघटन, विश्व के विभिन्न हिस्सों में कृषि पद्धति, बीमारियों तथा हानिकारक कीट तथा पशुपालनपर प्रभाव पड़ता है।

2. सूर्य का प्रकाश

सूर्य ऊर्जा का एक मात्र स्रोत है। सूर्य कृषि का ही नहीं वरन जीवन का भी आधार है। सूर्य के प्रकाश से वायुमंडल, और धरती दोनों को आवश्यक गरमी प्राप्त होती है। यह गरमी ही वाष्पीकरण, बादल निर्माण एवं वर्षा का कारण है, जो धरती पर जीवन का आधार है। सूर्य प्रकाश का सबसे बड़ा योगदान प्रकाश संश्लेषण के रूप में है। प्रकाश संश्लेषण की क्रिया के द्वारा प्रकाश ऊर्जा रसायनिक ऊर्जा में परिवर्तित होकर कार्बोहाइड्रेट का निर्माण करने में सहायक होती है।

पौधों की पत्तियों तक पहुँचने वाला प्रकाश संश्लेषण सक्रिय प्रकाश तरंग दैर्ध्य (wave lengthd) 750 से 400 मिली माइक्रोन के बीच होता है और लगभग 60 प्रतिशत अवरक्त (Infrared) तथा 1 प्रतिशत पारा–वैगनी (Ultra violet) होता है। प्रकाश संश्लेषण सक्रिय प्रकाश का भी लगभग 2 प्रतिशत भाग ही कार्बोहाइड्रेट निर्माण के कार्य में लगता हैं शेष अन्ततः ताप ऊर्जा में ही परिवर्तित हो जाता है।

प्रकाश अवधि (Day duration) का भी फसलों पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। जितने समय तक पौधों को सूर्य का प्रकाश उपलब्ध होता है, उतने ही समय तक हरी पत्तियों में प्रकाश संश्लेषण का कार्य होता है। अतएव लंबे दिनों में तथा गरमी के दिनों में ज्यादा प्रकाश संश्लेषण हो पाता है। प्रकाश संश्लेषण का प्रभाव पौधों के पुष्पण पर भी पड़ता है। कुछ खास जाति के पौधों को पुष्पित होने के लिए एक निश्चित क्रान्तिक अवधि के दिन की लम्बाई की आवश्यकता होती है। जब तक ऐसे पौधों की इस आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती, तब तक उनमें पुष्पण होगा ही नहीं। प्रकाश के दिन की लम्बाई के इस प्रभाव के आधार पर फसलों को तीन श्रेणियों में बाँटा गया है।

(क) अल्प प्रकाशपेक्षी पौधे (Short day plant)

(ख) दीर्घप्रकाशपेक्षी पौधे (Long day plant)

(ग) दिवस निष्प्रभावी पौधे (Day neutral plant)

(क) **अल्प प्रकाशपेक्षी पौधे (Short day plant)** : इस वर्ग के पौधों को पुष्पित होने के लिए एक निश्चित क्रान्तिक काल से छोटी लम्बाई के दिन (प्रकाश अवधि) की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए यदि किसी अल्प प्रकाशपेक्षी पौधे का क्रान्तिक काल 10 घंटा है तो उसे पुष्पित होने के लिए ऐसे दिनों की आवश्यकता होगी, जो 10 घंटे या उससे छोटे हों। यदि दिन की लम्बाई 10 घंटे से जरा–सी भी अधिक रहती है तो वह पौधा कभी भी पुष्पित नहीं हो सकेगा। मक्का, सोयाबीन, ज्वार, बाजरा, तम्बाकू, लोबिया, मूंग और धान की पारम्परिक ऊँचे कद के प्रभेद अल्प प्रकाशपेक्षी फसलों की श्रेणी में आते हैं।

CMYK

(ख) **दीर्घ प्रकाशपेक्षी पौधे (Long day plant)** : इस वर्ग के पौधों का भी दिन की लम्बाई हेतु एक क्रान्तिक काल होता है। यदि किसी दीर्घ प्रकाशपेक्षी पौधे का क्रान्तिक काल 14 घंटा है तो इसका तात्पर्य यह है कि वह पौधा तभी पुष्पित होगा जब दिन की लम्बाई 14 घंटा या उससे अधिक हो। यदि दिन की लम्बाई 14 घंटे से जरा–सी भी कम होती है तो वह पौधा कभी भी पुष्पित नहीं हो सकेगा। गेहूँ, जौ, जई, बरसीम, मटर, चना, मसूर आदि दीर्घ प्रकाशपेक्षी फसलें हैं।

यहाँ यह ध्यान देना आवश्यक है कि अल्प प्रकाशपेक्षी या दीर्घ प्रकाशपेक्षी दोनों प्रकार के पौधों का क्रान्तिक काल 12 घंटे से कम या ज्यादा दोनों हो सकता है।

(ग) **दिवस निष्प्रभावी पौधे (Day neutral plant)** : कुछ फसलें या पौधें ऐसे होते हैं जिनका पुष्पन दिवस की लम्बाई से अप्रभावित होता है। कपास, सूर्यमुखी, टमाटर एवं धान की बौनी किस्में इसी श्रेणी की फसलें हैं।

3. आर्द्रता (Humidity)

आर्द्रता का अर्थ है– वायुमंडल में उपस्थित जलवाष्प की मात्रा। हवा में जलवाष्प की मात्रा तापमान एवं हवा की गति पर आधारित है। हवा जलवाष्प को वायुमंडल नें वितरित करती है। जब किसी निश्चित तापमान पर हवा में और अधिक जलवाष्प धारण करने की क्षमता नहीं हो तो उसको संतृप्त आर्द्रता कहते हैं। तापमान जितना अधिक होगा, वायु की जलधारण क्षमता उतनी ही अधिक होगी। यदि संतृप्त आर्द्रता वाले वायु का तापमान कम होता है, तो कुछ जलवाष्प ओस, कुहासा, बादल आदि के रूप में घनीभूत हो जाएगा।

भूमंडल और वायुमंडल के बीच निरंतर जल और वाष्प का आदान प्रदान चलता रहता है। जलवाष्प जैसे ही वायु में पहुँचता है उसका विसरण, संवहन अथवा वायु के प्रभाव से चारो ओर वितरण होने लगता है। वायु की आर्द्रता बताने के लिए निम्नलिखित पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया जाता है

(क) निरपेक्ष आर्द्रता

(ख) सापेक्ष आर्द्रता या आपेक्षिक आर्द्रता

(ग) विशिष्ट आर्द्रता

(घ) ओसांक

(क) **निरपेक्ष आर्द्रता** : निरपेक्ष आर्द्रता किसी निश्चित आयतन के वायु में उपस्थित जलवाष्प की वास्तविक मात्रा का वजन है। इसे ग्राम / घन मीटर में व्यक्त किया जाता हैं।

$$\text{निरपेक्ष आर्द्रता} = \frac{\text{जलवाष्प का वजन (ग्राम)}}{\text{वायु का आयतन (घन मीटर)}}$$

(ख) **सापेक्ष आर्द्रता या आपेक्षिक आर्द्रता** : सापेक्ष आर्द्रता को प्रतिशत में व्यक्त किया जाता है। सापेक्ष आर्द्रता जितनी ज्यादा होगी, वायुमंडल में जलवाष्प उतना ही अधिक होगा।

$$\text{सापेक्ष आर्द्रता} = \frac{\text{हवा में वर्तमान जलवाष्प का वजन}}{\text{संतृप्ता के लिये जलवाष्प का वजन}} \times 100$$

(ग) **विशिष्ट आर्द्रता** : विशिष्ट आर्द्रता हवा में उपस्थित जलवाष्प के वजन एवं जलवाष्प सहित हवा के वजन का अनुपात है। इसे ग्राम / कि0ग्राम में व्यक्त करते हैं।

$$\text{विशिष्ट आर्द्रता} = \frac{\text{जलवाष्प का वजन (ग्राम)}}{\text{जलवाष्प सहित वायु का वजन (कि0ग्रा0)}}$$

(घ) **ओसांक** : ओसांक वह तापमान है, जिस पर हवा की कोई निश्चित मात्रा उसमें वर्तमान जलवाष्प के कारणों से संतृप्त हो जाती है। ओसांक की दूसरी परिभाषा यह भी दी जा सकती है कि यह हवा का वह तापमान है, जिसपर उसमें वर्तमान अदृश्य जलवाष्प कण दृश्य जल कणों में परिवर्तित हो जाएं। ओसांक पर आपेक्षिक आर्द्रता 100 प्रतिशत रहती है और हवा संतृप्त हो जाती है।

आर्द्रता का कृषि पर प्रभाव

वायुमंडल में अधिक आर्द्रता होने पर पौधों द्वारा वाष्पोत्सर्जन कम होता है और मृदा जल का वाष्पीकरण (Evaporation) भी कम होता है। कम आर्द्रता होने पर पौधों की जल की आवश्यकता बढ़ जाती है, एवं सिंचाई के लिए अधिक पानी की आवश्यकता होती है। आर्द्रता बढ़ने पर यह सम्भव है कि पौधों की रोगों से संघर्ष करने की शक्ति कम हो जाए और रोगों का प्रसार एवं प्रकोप अधिक हो। रोगों के साथ–साथ कीड़ों की संख्या एवं प्रकोप भी उच्च आर्द्रता पर बढ़ जाता है।

3. वर्षा

जल ही कृषि का आधार है और वर्षा जल का सर्वप्रमुख स्रोत। फसलों को सिंचाई जल भूगर्भीय जल एवं नहरों से काफी बड़े भूभाग पर प्राप्त होता है, परन्तु ये स्रोत भी वस्तुतः वर्षा के मुखापेक्षी (Dependent) है। यही कारण है कि किसी स्थान विशेष में कैसी फसलें लगेंगी यह मुख्यतः वहाँ होने वाली वर्षा पर आधारित है। जिन क्षेत्रों में काफी कम वर्षा होती है, वहाँ एक फसल भी लगा पाना कठिन हो जाता है। जिन क्षेत्रों में अपेक्षाकृत अधिक वर्षा होती है वहाँ धान, मक्का, पाट जैसे फसलें अधिक लगती है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में ज्वार, बाजरा, रागी जैसी फसलें अधिक लगती है। दलहनी फसलें हर तरह की वर्षा वाले क्षेत्रों में लगती है।

4. वायु दाब

वायु मंडल कई परतों का बना होता है। जैसे–जैसे ऊँचाई बढ़ती है, हवा विरल होती चली जाती है। एक परत में उपस्थित हवा का दबाव नीचे की परत पर पड़ता है। इस प्रकार पृथ्वी तल पर उसके ऊपर की परतों की हवा का दबाव पड़ता है। जैसे–जैसे समुद्र तल से ऊपर उठते जाते हैं, वायु–दाब कम होता चला जाता है। सामान्य दशा में प्रति 300 मीटर की ऊँचाई पर 34 मिलीबार वायु दाब कम हो जाता है। 5500 मीटर की ऊँचाई पर वायु दाब लगभग आधा हो जाता है और 11000 मीटर की ऊँचाई पर एक चौथाई। ऊँचाई पर वायुदाब कम होने का सीधा प्रभाव पानी के उबाल बिन्दु पर पड़ता है। 3000 मीटर की ऊँचाई पर पहुँचने पर पानी 100° से0 की जगह 95.5° से0 पर ही उबलने लगेगा। फलतः कोई भी भोजन अपेक्षाकृत अधिक समय में पकेगा।

किसी स्थान का वायुदाब मापने के लिए बैरोमीटर का व्यवहार होता है। किसी स्थान पर उगने वाले वनस्पति पर वायु दाब का काफी प्रभाव पड़ता है। अधिक ऊँचे पहाड़ों पर पैदा होने वाली वनस्पति अधिकतर बौनी होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि कम वायुदाब और कम ताप के कारण दैहिक शुष्कता हो जाती है।

5. चक्रवात

चक्रवात से वायुमंडल की उस असामान्य स्थिति का बोध होता है, जिसमें हवा का दबाव घट जाता है एवं वायु केन्द्र की ओर बहती है। चक्रवात दो प्रकार के होते हैं –

(1) उष्ण कटिबन्धीय

(2) शीतोष्ण कटिबन्धीय

1. **उष्ण कटिबन्धीय चक्रवात** इनका व्यास कुछ किलोमीटर से लेकर कई सौ किलोमीटर तक का होता है। ये काफी घातक होते हैं तथा उनके साथ अत्यधिक वर्षा का योग होता है । उष्ण कटिबन्ध के अत्यधिक विकसित चक्रवातों को तूफान तथा प्रचंड तूफान कहते हैं।
2. **शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात** इनका व्यास सदैव सैकड़ों किलोमीटर से अधिक होता है। उष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों की तुलना में इनकी प्रचंडता बहुत कम होती है।

उष्ण कटिबन्ध में चक्रवात की उत्पत्ति प्रायः छोटे प्रायदीपों के निकट सूर्यातप (धूप) में अन्तर के कारण होती है, जैसे हिन्द महासागर में चक्रवात मॉनसून के आरम्भ और अन्त में ही उत्पन्न होते हैं। शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों की उत्पत्ति पछुआ हवा की तरंगों के ध्रुव के चारो ओर ठंढी हवा के रगड़ के कारण होती है।

भारतवर्ष में चक्रवातीय हवा के साथ वर्षा और अँधड़ पानी आता ही रहता है। मॉनसून के पूर्व रोहिणी नक्षत्र में सामान्यतः वर्षा हुआ करती है। यह चक्रवातीय वर्षा है। सामान्यतः मार्च के महीने एवं सितम्बर के महीने में आँधी और वर्षा के साथ तेज हवायें

चलने की सम्भावना रहती है। वैसे बंगाल की खाड़ी से उठने वाले चक्रवात एवं उनका प्रभाव सामयिक स्थिति के कारण दूसरे समयों में भी हो सकता है। मार्च माह की चक्रवातीय वर्षा, अँधड़ एवं ओला वृष्टि के कारण, रब्बी मौसम की खड़ी फसलों को भारी क्षति पहुँचाती है।

1. प्रति चक्रवात

प्रतिचक्रवात चक्रवात के उलट होता है। परवर्ती वायुमंडलीय घूर्णन के कारण उत्पन्न होता है और इसमें अधिकतम दबाव केन्द्र में होता है और बाहर को ओर धीरे–धीरे दबाव घटता चला जाता है। शुष्क शीतल हवायें, बादलों की कमी एवं अत्यन्त कम वर्षा प्रति चक्रवातों के साथ जुड़े होते हैं।

जलवायु के कारकों का मौसम एवं कृषि से संबंध

जलवायु अपेक्षाकृत बड़े क्षेत्र के औसत मौसम का आकलन है । अतएव जलवायु और मौसम की चर्चा कभी भी एकल रूप (Isolation) में नहीं की जा सकती। जलवायु पर मौसम का और मौसम पर जलवायु का प्रभाव अवश्यम्भावी है । जलवायु के निम्ननिखित कारक हैं ।

(क) अक्षांश रेखायें (Latitude) (ख) समुद्र तल में ऊँचाई (Altitude) (ग) समुद्र से दूरी (Distancefrom Seashore) (घ) पहाड़ों की स्थिति (Orientation of Mountain) (ङ) मृदा (Soil) (च) समुद्री धारायें (छ) पवनों की दिशायें एवं (ज) वनस्पति।

अक्षांश रेखा (Lafitude)

विषुवत रेखा शून्य डिग्री अक्षांश पर स्थित है। यहाँ से 23½° उत्तर एवं 23½° दक्षिण पर स्थित कर्क एवं मकर रेखाओं के बीच का भू–भाग उष्णकटिबंधीय प्रदेश है, जहाँ सालों भर गरमी पड़ती है। यहाँ वही फसलें लगेंगी जो गर्म प्रदेशों में लग सकती हैं। उष्णकटिबंधीय प्रदेशों की मुख्य फसलें हैं – धान, मक्का, ज्वार, बाजरा, मडुआ (Ragi), मूंगफली, तिल, गन्ना इत्यादि। ऐसी फसलें जिन्हें बढ़ने एवं फूलने फलने के लिए ठंडे जलवायु की आवश्यकता होती है, जैसे–गेहूँ, सरसों, बरसीम, आलू, चना इत्यादि वे उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में नहीं उगाई जा सकती है। जैसे–जैसे अक्षांश की डिग्री में बढ़ोतरी होती जाती है, वैसे–वैसे फसलों के विकल्प कम होते जाते हैं। ध्रुवीय प्रदेशों में भोजन का स्रोत मछली पालन तक सीमित हो जाता है।

समुद्रतल से ऊँचाई (Altitude)

जैसे–जैसे समुद्र तल से ऊँचाई बढ़ती जाती है वैसे–वैसे तापमान में कमी आते जाती है। सामान्यतः 165 मीटर की ऊँचाई पर तापमान में एक डिग्री से0 की कमी हो जाती है। यही कारण है कि पहाड़ी क्षेत्रों में जो काफी ऊँचे स्थानों पर स्थित हों वहाँ गरमी के मौसम में भी तापमान काफी कम होता है, जो पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र होता है। कहीं–कहीं उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में भी गेहूँ की फसल लगती है। ऐसा क्षेत्र विशेष की समुद्र तल से ऊँचाई के कारण होता है, जहाँ तापमान कम होने के कारण जलवायु गेहूँ की खेती के अनुकूल हो जाती है।

समुद्र से दूरी : पानी का गुण है कि वह न तो शीघ्र गर्म होता है और न ही शीघ्र ठंडा होता है। ऐसा पानी के उच्च विशिष्ट ताप के कारण होता है। फलतः समुद्र के तटीय प्रदेशों का तापमान न तो बहुत ज्यादा होता है और न ही बहुत कम। समुद्र के तटीय प्रदेशों में वर्षा भी अपेक्षाकृत अधिक होती है। चक्रवातीय आँधी, तूफान एवं वर्षा की सम्भावना भी अधिक होती है। जो क्षेत्र समुद्रतल से दूर होते हैं, वहाँ वर्षा अपेक्षाकृत कम होती है।

पहाड़ों की स्थिति : पहाड़ों की स्थिति का भी जलवायु पर काफी प्रभाव पड़ता है। हिमालय पहाड़ उत्तर की बर्फीली हवाओं को भारतवर्ष में आने से रोक देता है। यदि ऐसा नहीं होता तो सम्पूर्ण भारत एक रेगिस्तान में परिवर्तित हो सकता था। हिमालय मानसून के बादलों को उत्तर की ओर जाने से रोक कर भारतवर्ष में अच्छी वर्षा कराने का माध्यम है। उसी प्रकार पश्चिमी घाट की ऊँची पहाड़ियाँ मानसून के बादलों को पश्चिम में रोक कर पहाड़ी के पश्चिम में तो भारी वर्षा का कारण बनती हैं, परन्तु पहाड़ों के पूर्वी भाग में वर्षा बिल्कुल नहीं होती।

मृदा (Soil) : शैल चट्टान निर्मित मिट्टियों वाले क्षेत्र अधिक गर्मी शोषित कर वातावरण को दिन में अधिक गर्म रखते हैं, परन्तु रात में वातावरण ठंडा रखते हैं। गहरे रंग की मिट्टियाँ सूर्य का ताप अधिक मात्रा में शोषित कर वातावरण को अपेक्षाकृत अधिक गर्म रखती हैं।

समुद्री धारायें : समुद्र में गर्म जल एवं ठंडे जल दोनों प्रकार की धारायें बहती रहती है। ध्रुवीय क्षेत्रों से आने वाली धारायें ठंढी तथा विषुअत क्षेत्र से आने वाली धारायें गर्म होती हैं। एक ही अक्षांश पर स्थित लैब्रेडोर और इंगलैण्ड क्रमशः ठंढे और गर्म होने का यही कारण है। दक्षिणी अफ्रिका एवं जापान के पूर्वी और पश्चिम तटों के तापमान में भारी अन्तर का कारण समुद्री धारायें ही हैं।

पवनों की दिशायें : पवनों की दिशायें एवं वेग जलवायु को प्रभावित करती हैं। ठंढे स्थान की ओर से आने वाली हवाओं के कारण तापमान में कमी आ जाती है, जबकि उष्ण क्षेत्रों से आने वाली हवायें किसी स्थान विशेष को गर्म कर देती है।

वनस्पति : घनी वनस्पति वाले क्षेत्रों में अधिक आर्द्रता होती है और अधिक वर्षा होती है। अधिक वन और वनस्पति के कारण वृक्षों के पत्तों से अत्यधिक वाष्पोत्सर्जन (Transpiration) होता है, जो उच्च आर्द्रता का कारण होता है।

मौसम सम्बन्धी भविष्यवाणी

मौसम के तत्त्वों एवं जलवायु के कारकों की स्थिति के आधार पर मौसम का पूर्वानुमान लगाया जाता है। मौसम का पूर्वानुमान किसानों के लिए अत्यन्त फायदेमंद सूचना हो सकती है। फसल की कटनी एवं दौनी के समय यदि वर्षा, आँधी, तूफान, ओला वृष्टि, हवा की दिशा एवं गति की पूर्व सूचना उपलब्ध हो सके तो अनेकों हानिकारक स्थितियों से बचा जा सकता है।

भारतवर्ष में सन् 1875 में पूना में Indian Matereological Department (भारतीय मौसम विज्ञान विभाग) की स्थापना की गई । अपनी स्थापना से लेकर आजतक इस विभाग ने बराबर प्रगति की है और आज यह विश्व की आधुनिकतम मौसम सेवाओं में से एक समझी जाती है । 8 जुलाई, 1970 से इस विभाग में आँकड़ों के संकलन और विश्लेषण के लिए इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटरों का व्यवहार आरम्भ कर दिया गया है ।

पूरे भारतवर्ष में मौसम वेधशालाओं का जाल फैला हुआ है, जहाँ से मौसम के प्रतिदिन की स्थिति की सूचना प्राप्त होती रही है । वर्तमान में लगभग 125 वेधशालायें कार्य कर रही हैं। मौसम के बेहतर पूर्वानुमान के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

1. विभिन्न वेधशालाओं से प्राप्त आँकड़ों का सही संकलन।
2. जो आँकड़े प्राप्त होते हैं उनका सावधानी पूर्ण अध्ययन ।
3. भूतकाल में समान स्थितियों में समान आँकड़ों के संदर्भ में विकसित मौसम का इतिहास ।
4. अगले 24 घंटों में मौसम के विभिन्न तत्त्वों के होने की संभावना तथा उनका संकलन ।
5. भविष्य के संभावित मौसम का सही अनुमान करना ।

मौसम का पूर्वानुमान एक बड़े क्षेत्र के लिए किया जाता है। इसलिए संभावना रहती है कि उस बड़े क्षेत्र के कुछ हिस्सों में तो पूर्वानुमान सही सिद्ध हुआ, परन्तु किसी अन्य टुकड़ें में पूर्वानुमान सही सिद्ध नहीं हुआ। इसलिए मौसम संबंधि पूर्वानुमान की सही होने का आकलन इस तथ्य को दृष्टि में रख कर ही किया जा सकता है ।मौसम पूर्वानुमान का जो आधार है, उसे निरंतर और भी वैज्ञानिक बनाते रहना होगा एवं उसमें आवश्यक सुधार लाते रहना अपेक्षित है ताकि मौसम पूर्वानुमान को अधिक से अधिक सटीक बनाया जा सके ।

फसल उत्पादन के संबंध में जलवायु परिवर्तन

किसी स्थान विशेष के जलवायु में कोई परिवर्तन समय के बहुत लंबे अंतराल के बाद ही संभव है । यह अवधि हजारों वर्षों की हो सकती है ।

निकट के वर्षों में ओजोन स्तर में कमी, कहीं–कहीं ओजोन (Layer) में छिद्र होने की आशंका, वायुमंडल में कार्बनडायआक्साईड जैसी Green house गैसों की बढ़ती मात्रा के कारण अखिल विश्व के तापमान में बढ़ोत्तरी की आशंका हो रही है । यद्यपि अभी तक कोई ऐसा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं देखा गया है जो नियमित (Constant) हो, परन्तु आशंका तो हर क्षेत्र में है। यदि विश्व का तापमान बढ़ता है तो फसल उत्पादन पर प्रभाव तो पड़ेगा ही । ग्लोबल वार्मिंग से गेहूँ, आलू, सरसों जैसे फसलों के अन्तर्गत रकबा घट सकता है। ध्रुवों की बर्फ पिघलने से समुद्र तल का स्तर ऊपर उठ सकता है और कुछ कृषिगत क्षेत्र समुद्र में चला जा सकता है । फसल पद्धति (Cropping pattern) में भी हल्का परिवर्तन अपेक्षित है ।

मौसम

प्रश्न कोष

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. मौसम की बात एक............. क्षेत्र के संदर्भ में होती है, जबकी जलवायु की चर्चा......... भू–भाग के संदर्भ में की जाती है।
2. मौसम .... बदलता रहता है, जबकी जलवायु में .... शताब्दियों की बात है।
3. वह न्यूनतम तापमान जिसके नीचे किसी फसल विशेष की बढ़वार लगभग अवरुद्ध हो जाती है .... कहलाता है ।
4. एक ही फसल उष्ण कटिबंधीय प्रदेश में अपेक्षाकृत .... दिनों में तैयार होता है, जबकि समशीतोष्ण कटिबंध में उसे पकने के लिए .... अवधि की आवश्यकता होती है ।
5. तापमान में 10° से 20° से. की बढ़ोत्तरी होने पर सभी प्रकार की रसायनिक प्रतिक्रियाओं में .... से .... गुणा तक अधिक तीव्रता आ जाती है।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. मौसम के तत्त्वों के नाम लिखें।
2. गेहूँ की परिपक्वता अवधि की तुलना बिहार एवं पंजाब के संदर्भ में करें।
3. उष्ण कटिबंधीय एवं समशीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में एक वर्ष में ली जाने वाली फसलों की संख्या का अन्तर स्पष्ट करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. विभिन्न जलवायु वाले क्षेत्रों में ली जाने वाली फसलों का विवरण प्रस्तुत करें।
2. Day Degree (डे डिग्री) क्या है ? इसके आधार पर फसलों की परिपक्वता अवधि का आकलन कैसे करते हैं ?
3. दिन की लम्बाई (Day Length) के आधार पर प्रकाश पेक्षी फसलों का वर्गीकरण प्रस्तुत करें।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. तापमान के कृषि के विभिन्न पहलुओं पर प्रभाव का विवरण प्रस्तुत करें।
2. आर्द्रता की गणना किन रूपों नें करते हैं ? सभी के Equation (इक्वेशन) दें।
3. मौसम का पूर्वानुमान किन तत्त्वों के आधार पर किया जाता है? किसी बड़े क्षेत्र के लिए की गई भविष्यवाणी हमेशा सही क्यों नहीं हो पाती।

*****

1.6 कर्षण

कर्षण अर्थात् भूपरिष्करण एवं कृषि का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। कृषि के साथ ही कर्षण का भी प्रारम्भ हुआ। कृषि की परिभाषा के अनुसार कृषि मानव मात्र का वह कार्य कलाप है जिसका मुख्य उद्देश्य भोजन, वस्त्र के लिए रेशे और जलावन का उत्पादन है। इस परिभाषा की मुख्य बात यह है कि उत्पादन मनुष्य की किसी क्रिया का प्रतिफल हो। पौधों के उत्पादन के लिए यह आवश्यक है कि बीज या नये पौध उत्पादन की वस्तु जैसे जड़, तना, कन्द या किसी अन्य भाग को जमीन के नीचे पहुँचाया जाए, पौधों की जड़ों का मिट्टी में प्रसार हो, जड़ों को पोषक तत्त्व एवं नमी की प्राप्ति हो ताकि पौधा विकसित हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भूमि की कोड़ाई आवश्यक है। इस कोड़ाई के साथ ही कर्षण की शुरुआत हो जाती है।

परिभाषा के अनुसार कर्षण, यन्त्रों एवं उपकरणों के द्वारा भूमि की ऊपरी परत की खुदाई का इस प्रकार किया जाना है, जिससे बीज के अंकुरण एवं पौधों के बढ़ाव की अनुकूल स्थिति उत्पन्न हो जाए।

"Tillage is the mechanical manipulation of surface soil with tools and implements to bring about a condition favourable for germination and growth of plants".

सन् 1731 में प्रकाशित अपनी पुस्तक हॉर्स होईंग हस्बैन्डरी (Horse hoeing husbandry) में Jethro Tull ने यह परिकल्पना की थी कि पोषण के रूप में पौधों की जड़ें भूमि से मिट्टी के महीन कणों को ग्रहण करती है। यद्यपि यह परिकल्पना सही नहीं थी, परन्तु बार–बार के कर्षण के द्वारा मिट्टी की ऊपरी परत को महीन बनाने की ललक किसानों में सदा से रही है। इसी क्रम में कर्षण के उदेश्यों को निरूपित किया गया है।

कर्षण के उद्देश्य

1. विभिन्न फसलों की जड़ों की गहराई एवं उनकी आवश्यकता के अनुरूप बीज–शय्या (Seed bed) का निर्माण।
2. भूमि की सतह पर उग आए अवांछित पौधों (Weeds) को उखाड़कर ऊपर लाना या उन्हें भूमि नें नीचे गहराई में दबा देना ताकि उनका अपघटन (Decomposition) हो जाए।
3. भूमि में डाले जाने वाले जैविक खाद, रासायनिक उर्वरक या किसी अन्य वांछित रसायन जैसे कीट नाशी, खर–पतवार नाशी या भूमि सुधारक (Ammendments) को मिट्टी में वांछित गहराई तक पहुँचा देना।
4. मिट्टी के भीतर वायु–संचार को बेहतर बनाना ताकि जड़ों को ऑक्सीजन की प्राप्ति हो तथा जैव पदार्थों एवं रसायनों का वांछित अपघटन (Decomposition-mineralisation) हो सके।
5. मिट्टी की जल शोषण क्षमता (Infiltration) एवं जल धारण क्षमता (water holding capacity) को बेहतर बनाना।
6. मिट्टी के भीतर कीड़ों के घर तथा व्याधि फैलाने वाले कारकों के वास स्थल को तोड़ कर नष्ट कर देना।
7. मिट्टी की संरचना एवं aggregation को बेहतर बनाना।
8. भू–क्षरण (Soil erosin) को कम करना।
9. जैव पदार्थों को मिट्टी में नीचे दबाने एवं उनके अपघटन के फलस्वरूप ह्यूमस (Humus) का निर्माण, जो मिट्टी के गुणों में गुणात्मक सुधार ला सकता है।

कर्षण का वर्गीकरण

कर्षण के समय के आधार पर कर्षण का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया गया है।

1. प्रारम्भिक कर्षण
2. माध्यमिक कर्षण
3. अन्तर कर्षण
4. गरमा कर्षण
5. शीत कालीन कर्षण
6. परती भूमि कर्षण
7. रासायनिक कर्षण

1. प्रारम्भिक कर्षण

किसी फसल की बोआई के पूर्व बैठ गई (compact) या कड़ी (hard) मृदा (soil) की परत को ढीला करने के उद्देश्य से अथवा भूमि के ऊपर के वानस्पतिक पदार्थों यथा खर–पतवारों या पिछली फसल के डंठल एवं जड़ों या जैविक खाद को मिट्टी में गहराई में दबाने के लिए की गई जुताई को प्रारम्भिक कर्षण की संज्ञा दी गई है।

परिभाषा के अनुसार " प्रारम्भिक कर्षण भूमि की जोत–कोड़ के लिए की जाने वाली वह शुरुआती जुताई है, जिसका मुख्य उद्देश्य बैठी हुई मृदा की सघनता को तोड़ना, सतह के वानस्पतिक अवशेषों को गहरे दबाना और मिट्टी के कणों के समुच्चय (Aggregates) का पुनरगठन है।

"Primary tillage is the initial major soil working operation designed to reduce soil strength, cover plant materials and rearrange aggregates."

सामान्यतः केवाल अर्थात चिकनी मिट्टी में फसल की बोआई के लिए प्रारम्भिक कर्षण आवश्यक हो जाता है। बलुआही या बलुआही दोमट भूमि में मिट्टी बैठी (compact) या कड़ी (hard) नहीं होती और मिट्टी के कणों का समुच्चय भी अपरिवर्तित रूप में होता है। फलतः वहाँ, सामान्यतः प्रारम्भिक कर्षण की आवश्यकता होती ही नहीं है। परन्तु भारी (Heavy) केवाल (clayee) मिट्टियों में प्रारम्भिक कर्षण आवश्यक हो जाता है। प्रारम्भिक कर्षण के लिए गहरी जुताई करने वाले हल (Plough) की आवश्यकता होती है जो बैल चालित या ट्रैक्टर चालित दोनों प्रकार के हो सकते हैं। प्रारम्भिक कर्षण के अन्तर्गत ऊपर की मिट्टी नीचे और नीचे की मिट्टी ऊपर आती है और मिट्टी एक जगह से हट कर थोड़ा बगल में चली जा सकती है। इसे मिट्टी पलटना भी कहते हैं।

2. माध्यमिक कर्षण

"प्रारम्भिक जुताई के बाद से फसल की बोआई तक किये जाने वाले कर्षण कार्यो को माध्यमिक कर्षण कहा जाता है।"

"The tillage operations following primary tillage and up to sowing of the seed is called secondary tillage"

माध्यमिक कर्षण का उद्देश्य बड़े ढेलों को तोड़ कर छोटा करना, मिट्टी को दानेदार–भुरभुरा बनाना, सतह को समतल करना, मिट्टी में दबे खर–पतवारों को सतह पर खींच लाना और जगह–जगह पर जमा कर देना होता है। माध्यमिक जुताई में अपेक्षाकृत हल्के यंत्रों का उपयोग होता है जिन्हें खींचने में बैलों या ट्रैक्टर को कम बल लगाना पड़ता है। विभिन्न प्रकार के बैल चालित या ट्रैक्टर चालित हैरो एवं कल्टीवेटर माध्यमिक कर्षण के मुख्य यंत्र है।

3. अन्तरकर्षण

"खड़ी फसल में मिट्टी में किये जाने वाले कर्षण कार्य को अन्तरकर्षण कहते हैं।

"The tillage operations done in the standing field crops are referred to as inter tillage".

अन्तरकर्षण के यन्त्र या उपकरण (tools and implements) अपेक्षाकृत हल्के होते हैं। इन्हें मानवश्रम या बैल या ट्रैक्टर के द्वारा भी चलाया जा सकता है। अन्तरकर्षण की क्रिया यदि श्रमिकों से कराई जाए तो सबसे ज्यादा समय लेने वाली और खर्चीली भी होती है। बैल चालित यंत्रों के प्रयोग से कार्य कम समय में सम्पन्न हो जाता है और लागत खर्च भी कम आता है।

अन्तर कर्षण की क्रिया के द्वारा फसल में उग आये खर–पतवारों को निकाला जाना सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसके अतिरिक्त खड़ी फसल में उपरिवेशित उर्वरकों या अन्य किसी रसायन को मिट्टी में मिलाना, पौधों पर मिट्टी चढ़ाना या मिट्टी की सतह को भुरभुरी बनाना अन्तरकर्षण के अन्तर्गत किये जाने वाले अन्य कार्य हैं। भूमि की ऊपरी परत को भुरभुरी बना देने के फलस्वरूप मिट्टी की नमी के वाष्पीकरण की प्रक्रिया धीमी हो जाती है, जिससे मिट्टी में नमी ज्यादा समय तक संरक्षित रहती है। खुरपी, कुदाल, हाथ से चलाये जाने वाले कल्टीवेटर, वीडर (कोनो वीडर, रोटरी–हो) इत्यादि अन्तर कर्षण के यन्त्र है।

4. गरमा कर्षण

रब्बी मौसम (जाड़े की ऋतु) की फसल की कटनी सामान्यतः मार्च–अप्रैल के महीनों में कर ली जाती है। गरमा फसलों की खेती में अत्यधिक सिंचाई की आवश्यकता तथा गरमा मौसम में भूमिगत जल के स्तर में होने वाली भारी गिरावट के कारण गरमा मौसम में अधिकांश कृषिगत क्षेत्र परती ही पड़ा रहता है। रब्बी फसल की कटनी के बाद खेत में छूटे खर–पतवार तथा कटनी के बाद उग आये खर–पतवार अबाध गति से बढ़ने लगते हैं। शीघ्र ही उनमें बीज बनता है जो झड़ कर मिट्टी के सतह पर गिरता

है। खर–पतवारों के पौधों में बीज बड़ी भारी संख्या में बनते हैं जो वर्षों अपनी अंकुरण क्षमता संजोये रहते हैं। फलतः अगले वर्ष वही खर–पतवार कई गुणा अधिक संख्या में निकलते हैं। यदि ऐसे पौधों को बीज बनने से पूर्व मिट्टी में जोत कर मिला दिया जाए तो आने वाले मौसमों में खर–पतवारों की संख्या अपेक्षाकृत कम होगी और मिट्टी में नीचे दब जाने वाले खर–पतवार का अपघटन हो कर मिट्टी को पोषक तत्त्व और बहुमूल्य ह्यूमस प्राप्त होगा। मिट्टी पलटने वाले हल से गरमा कर्षण करने के फलस्वरूप बहुवार्षिक खर–पतवारों के कन्द, जड़े एवं अन्य वानस्पतिक भाग सतह के नजदीक आ जाते हैं। गरमा मौसम की तेज शुष्क धूप में वस्तुतः ये जल जाते हैं और पुनः नई पौध उत्पन्न करने की क्षमता खो देते हैं।

जब फसल की कटनी होती है तो पूर्ववर्ती फसल के कीट एवं व्याधियों के जनक मिट्टी में तथा पूर्ववर्ती फसल के कटे डंठलों में अपना घर बनाये होते हैं। गरमा कर्षण इन घरों को तोड़ देता है और मिट्टी की सतह पर आकर कीट इत्यादि तेज धूप में नष्ट हो जाते हैं।

गरमा कर्षण मिट्टी पलटने वाले हल से करने की ही अनुशंसा की जाती है। इस जुताई के कारण भूमि की ऊपरी परत असमतल हो जाती है। फलस्वरूप गर्मी के मौसम में होने वाली चक्रवाती वर्षा यानी प्राक् मान्सून की वर्षा का जल बह कर खेत के बाहर नहीं जाता और मिट्टी द्वारा सोख लिया जाता हे। फलस्वरूप मिट्टी में अधिक जल संग्रहित एवं संरक्षित होता है जो भूगर्भीय जल के स्तर को ऊपर उठाता है।

उपरोक्त लाभ के दृष्टिकोण से गरमा कर्षण या गरमा–जुताई काफी लाभप्रद क्रिया बन जाती है। चूकि गरमा जुताई हल (Plough) से ही की जाती है, अतएव गरमा कर्षण को प्रचलित रूप में गरमा जुताई के नाम से ही जाना जाता है।

5. शीत कालीन कर्षण

समशीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में गरमी का मौसम आता नहीं है। वहाँ अधिकांश क्षेत्रों में हिमपात होता है। यहाँ बर्फ महीनों जमा रहती है। बर्फ के पिघलने के बाद ही कोई फसल लगती है। यहाँ हिमपात के पूर्व कर्षण करते हैं जिसका मूल उद्देश्य गरमा कर्षण की तरह ही होता है।

6. परती कर्षण

कभी–कभी मिट्टी की संरचना (structure) तथा मिट्टी की उर्वरता (fertility) में सुधार के लिए किसी मौसम विशेष में खेत को परती (Fallow) छोड़ दिया जाता है।

यदि परती रखने के दौरान खेत की जुताई नहीं की जाए तो खेत में ढेरों खर–पतवार उग आयेंगे जो खेत से पोषक तत्त्व ग्रहण करते रहेंगे। इसलिए परती खेत की भी जुताई करनी पड़ती है ताकि खर–पतवार नियंत्रित रहें और वर्षा का अधिकतम जल खेत में संग्रहित होता रहे।

7. रसायनिक कर्षण

जब धान की फसलें कटती है, तब भी खेत काफी गीला होता है। अगली फसल की बोआई के लिए खेत तैयार करने हेतु खेत के सूखने की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। फलतः अगली फसल की बोआई में काफी विलम्ब होता है। यदि कोई भी फसल अपने सर्वोत्तम समय पर बोआई करने से वंचित रह जाती है तो उसकी उपज में भारी कमी आ जाती है। यदि धान की फसल के कटे डंठलों एवं जड़ों पर पाराक्वाट (Paraquat) नामक खर–पतवार नाशी रसायन के 0.1% घोल कर छिड़काव कर दिया जाता है तो कुछ ही दिनों में ये डंठल और जड़े अपघटित (Decompose) हो जाती है तथा खेत के सारे खर–पतवार भी नष्ट हो जाते हैं। इस रसायन के छिड़काव के 10–12 दिनों बाद, बिना किसी कर्षण क्रिया के, खेत में अगली फसल की बोआई की जा सकती है। इस क्रिया को सायनिक कर्षण की संज्ञा दी गई है।

कर्षण की बारम्बारता एवं परिमाण (Quantum) के आधार पर कर्षण को निम्न प्रकार से बॉटा गया है।

1. पारम्परिक कर्षण (Traditional tillage)
2. निम्नतम कर्षण (Minimum tillage)
3. शून्य कर्षण (Zero tillage)

प्रश्न कोष

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. भूमि की ऊपरी परत की, ... एवं .... से खुदाई को कर्षण की संज्ञा दी जाती है।
2. .... (1731) की किताब हॉर्स होइंग हस्बैन्ड्री के अनुसार पौधे .... भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं।
3. प्रारम्भिक कर्षण की आवश्यकता, मुख्य रूप से .... मिट्टी में होती है।
4. प्रारम्भिक कर्षण का मुख्य यंत्र .... है ।
5. प्रारम्भिक जुताई से फसल की बोवाई तक किये जाने वाले कर्षण कांर्यों को ..... कहते हैं।
6. ह्यूमस (Humus) की प्राप्ति जैविक पदार्थ के .... से होती है।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. बार–बार की जुताई के द्वारा मिट्टी की ऊपरी परत को महीन बनाने की ललक किसानों में क्यों रही है ?
2. रसायनिक कर्षण क्या है ? लिखें ।
3. प्रारम्भिक कर्षण की परिभाषा दें एवं उसके मूल उद्देश्यों को स्पष्ट करें ।
4. परती कर्षण के उद्देश्यों को लिखें।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कषर्ण के परिमाण (Quantum) के आधार पर कर्षण को कैसे वर्गीकृत किया गया है ?
2. गरमा कर्षण के उद्देश्यों को स्पष्ट करें।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. कर्षण के उद्देश्यों की विस्तृत चर्चा करें।
2. प्रारंभिक कर्षण क्या है ? किन–किन स्थितियों में इसे किया जाना आवश्यक है ?
3. माध्यमिक कर्षण के महत्त्व पर प्रकाश डालें ।

*****

1.7 कर्षण यंत्र

कर्षण एक क्रिया है, जिसे करने के लिए यंत्रों की आवश्यकता होती है। जिस उद्देश्य से कर्षण की क्रिया संपादित की जाती है, उसी के अनुरूप उस यंत्र विशेष का निर्माण होता है। कुछ कर्षण कार्यों में मिट्टी को काफी गहराई तक खोदना पड़ता है। ऐसे कार्यों के लिए भारी यंत्रों की आवश्यकता होती है, जिन्हें पशुओं द्वारा (बैल, भैंसा या घोड़ा इत्यादि) खींचा जा सकता है, अथवा ट्रैक्टर या पावर टीलर का उपयोग आवश्यक होता है। वैसे ही कभी–कभी मिट्टी की केवल ऊपरी परत को खोद कर ढीला करना होता है। यह कार्य हल्के यंत्रों या उपकरणों के द्वारा होता है। इनमें अधिकांश एकल श्रमिक द्वारा भी चलाये जा सकते हे। इन यंत्रों को खेत की तैयारी, फसल की बोआई एवं अन्तरकर्षण के कार्यों में प्रयोग में लाया जाता है। कार्य के उद्देश्य के दृष्टिकोण से कर्षण यंत्रों को चार भागों में बाँटा जा सकता है।

1. प्रारम्भिक कर्षण यंत्र
2. माध्यमिक कर्षण यंत्र
3. अन्तर कर्षण यंत्र
4. विशिष्ट कर्षण यंत्र

चित्र–1, मिट्टी पलट हल

1. **प्रारम्भिक कर्षण यंत्र** –प्रारम्भिक कर्षण के मुख्यतः तीन उद्देश्य होते हैं :–

   1. कड़ी पड़ गई या बैठी मिट्टी की दृढ़ता को तोड़ कर मृदा की ऊपरी परत को ढीला करना। ट्रैक्टर आदि भारी मशीनों के चलने, पशुओं के चरने, मानवों के आवागमन के चलते या मिट्टी का गठन भारी होने के कारण मिट्टी कड़ी हो जाती है, जिसपर पौधे उगाने के लिए मिट्टी की इस दृढ़ता को तोड़ना आवश्यक हो जाता है।
   2. भूमि की सतह पर उगे वनस्पति या पूर्ववर्ती फसल के डंठलों और जड़ों को या जैविक खाद को मिट्टी में गहरे दबाना।
   3. मिट्टी के बैठने के कारण मृदा की संरचना टूट जाती है, कणों के समुच्चय भी बिखर जाते हैं। प्रारम्भिक कर्षण के कारण इन मृदा समुच्चय का पुनः निर्माण होता है, जो अच्छी फसल उगाने के लिए आवश्यक होता है।

प्रारम्भिक कर्षण के सभी यंत्र भारी रचना वाले होते हैं, जिन्हें खींचने के लिए अधिक शक्ति की आवश्यकता होती है। सामान्यतः इन्हें बैलों द्वारा या ट्रैक्टर द्वारा खींचा जाता है। विगत तीन–चार दशकों से बैल से कर्षण की प्रथा लगभग समाप्त–सी हो गई है। उन दिनों लगभग सभी यंत्र दो प्रकार के बनते थें, बैल चालित और ट्रैक्टर चालित। परन्तु आधुनिक कृषि में लगभग सभी कर्षण यंत्र ट्रैक्टर अथवा पावर टीलर से खींचे जाने योग्य ही बनाये जा रहे हैं। फिर भी बैल चालित प्रमुख कर्षण यंत्रों का संक्षिप्त विवरण इस पाठ में दिया जा रहा है। प्रारम्भिक कर्षण के प्रमुख यंत्रों का विवरण नीचे दिया जा रहा है–

(क) देशी हल :देशी हल लकड़ी का बना यंत्र है, जिसमें केवल उसका फार लोहे का होता है। देशी हल एक ऐसा हल है जिससे प्रारम्भिक, माध्यमिक और अन्तरकर्षण तीनों प्रकार की जुताई हो सकती है। हल के हरीश में यह प्रावधान होता है कि आवश्यकता अनुसार गहरी या छिछली जुताई दोनों की जा सके। हल के मुख्य भाग की चौड़ाई भी कम या अधिक की जा सकती है। यही कारण है, कि देशी हल का उपयोग प्रारम्भिक कर्षण, माध्यमिक कर्षण और बोआई के लिए भी किया जा सकता है। देशी हल अंग्रेजी के अक्षर V के आकार की हराई बनाता है। यह मिट्टी को काटता है, पर उलटता नहीं है। इससे जुताई करने पर दो हराइयों के बीच अनजुती भूमि रह जाती है, जिस कमी को दूसरी दिशा से जुताई कर कम किया जा सकता है। इसके मुख्य अंग हैं हरीश, वॉडी, फार, और हत्था।

(ख) मिट्टी पलट हल (Mould Board Plough) :यह एक मिट्टी पलटने वाला हल है। यह बैलों द्वारा तथा ट्रैक्टर द्वारा खींचे जाने योग्य, दोनों प्रकार का निर्मित होता है। इस हल की विशेषता यह है कि यह एक मिट्टी पलटने वाला हल है, जो ऊपर की मिट्टी नीचे और नीचे की मिट्टी ऊपर कर देता है। बैल चालित मोल्ड बोर्ड हल 15 सें0 मी0 की गहराई तक जुताई करता है जबकि ट्रैक्टर चालित मोल्ड बोर्ड हल 25 से 30 सें0 मी0 गहरी जुताई करता है। मोल्ड बोर्ड हल से जुताई करने पर भूमि का कोई भी भाग अनजुता नहीं रह जाता। ये हल मजबूत तथा अच्छें लोहे के बने होते हैं। भूमि की सतह पर के वनस्पति या वानस्पतिक अवशेषों, जैविक खाद तथा हरी खाद को मिट्टी में गहरे दबाने के लिए यह यंत्र अत्यन्त ही कारगर है। गरमा जुताई या कड़ी परत को तोड़ने के लिए भी यह काफी उपयुक्त यंत्र है। कुछ प्रसिद्ध मिट्टी पलटने वाले हल की सूची में आने वाले मोल्ड बोर्ड हैं – मेस्टान, प्रजा, शाबास, विक्ट्री एवं पंजाब हल आदि। मोल्ड बोर्ड हल के मुख्य अंग है – फार, Land Side, Mould

Board (पंखा), Frog (ढॉचा), Handle (हल्या), Beam (हरीश) इत्यादि। फार मिट्टी को काटता है। Land Side, हल का वह भाग हैजो कूंड के तलवे से रगड़ता हुआ चलता है। यह हल को सीधा चलाने में सहायक सिद्ध होता है। Share मिट्टी काट कर Mould Board पर डालता है, जो मिट्टी को पलट देता है। ये तीनों भाग (Share, Land side और Mould board) Frog (ढॉचे) से जुड़े होते हैं। ये सभी मिल कर Plough Bottom कहे जाते हैं। हल के ये भाग मिट्टी में रहते हैं। इसके अतिरिक्त एक Beam या Shaft होता है जो ट्रैक्टर या बैलों के जुआठ (पालो) से जुड़ा होता है ताकि खींचा जा सके। हत्था भी एक आवश्यक भाग है जो बैल चालित मोल्ड बोर्ड हल का अंग है। इन मुख्य भागों के अतिरिक्त मोल्ड बोर्ड हल के कुछ सहायक भाग भी होते हैं। पहिया एक सहायक अंग है जो हल की गहराई नियंत्रित करता है। यह हरीश से जुड़ा होता है।

(ग) तवेदार हल (Disc plough) :यह भी प्रारम्भिक जुताई का एक यंत्र है। इसमें फार और Mould Board की जगह स्टील के बड़े–बड़े नतोदर (Concave) तवे होते हैं। ये तवे मिट्टी को काट कर एक तरफ फेंक देते हैं। सामान्यतः तवे का व्यास 60 सें0 मी0 का होता है जो 30 से 35 सें0मी0 की गहराई तक की मिट्टी को काट सकते हैं। तवेदार हल ऐसी मिट्टियों के लिए ज्यादा उपयुक्त है, जिसमें खर–पतवारों एवं उनकी जड़ों के जाल सा मिट्टी के भीतर हो। तवे खर–पतवारों के जाले को काट कर मिट्टी में मिला देते हैं। ऐसी मिट्टियाँ जो कंकरीली न हो, वहाँ के लिए तवेदार हल ज्यादा उपयुक्त है। Mould Board हल की तरह यह ढेले नहीं बनाता, अतः तवेदार हल की जुताई के बाद हैरो (Harrow) चलाना आवश्यक नहीं होता।

चित्र–2, तवेदार हल

तवेदार हल गहरी जुताई के लिए ज्यादा उपयुक्त हैं यह लसलसी (Sticky) भूमि की जुताई के लिए भी कारगर है, जहाँ मिट्टी पलट हल काम नहीं कर सकता। अत्यधिक कड़ी एवं सूखी भूमि में भी तवेदार हल से जुताई हो सकती है, जिसके लिए मिट्टी पलट हल उपयुंक्त नहीं होगा। तवेदार हल से पत्थरीली जमीन की भी जुताई हो सकती है, जहाँ मिट्टी पलट हल अच्छा काम नहीं कर सकता ।

परन्तु तवेदार हल वानस्पतिक अवशेषों, हरी खाद एवं जैविक खाद को मिट्टी में दबाने के लिए उतना उपयुक्त नहीं होगा, जितना कि मिट्टी पलट हल। तवेदार हल मिट्टी पलट हल की अपेक्षा ज्यादा भारी होता है, क्योंकि यह अपने भार के कारण मिट्टी में घंसता है, जबकि मिट्टी पलट हल ट्रैक्टर या बैलों के खिंचाव के कारण मिट्टी में गहराई तक जाता है।

2. माध्यमिक कर्षण यंत्र

माध्यमिक कर्षण का उद्देश्य खेत के ढेलों को तोड़ना, मिट्टी की ऊपरी परत को भुरभुरी, दानेदार एवं मुलायम करना तथा खेत की ऊपरी परत को समतल करना होता है। ये सारे कार्य इसलिए किये जाने आवश्यक होते हैं ताकि फसल विशेष के अनुकूल बीज शय्या (Seed bed) तैयार हो सके। यह बीज शय्या ऐसी होनी चाहिए जिसकी जोत अर्थात् भौतिक गुणों की स्थिति, पौधों की आवश्यकता के अनुरूप हो।

माध्यमिक कर्षण के लिए मुख्यतः चार प्रकार के यंत्रों का उपयोग होता है–

(क) हैरो (Horrow) (ख) कल्टीवेटर (ग) पाटा (Plank) (घ) रॉलर (Roller)

(क) हैरो (Harrow) :हैरो कम गहरी जुताई करने वाले यंत्र है। हैरो का उद्देश्य ढेलों को तोड़ना, खेत की ऊपरी परत के खर–पतवारों को नष्ट करना तथा खर–पतवारों के अवशेषों को उछाल कर सतह के ऊपर लाना, खर–पतवारों के अवशेषों को जगह–जगह पर जमा करना, बीज शय्या तैयार करना तथा बीज एवं उर्वरकों को मिट्टी में मिलाना, होता है। उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हैरो कई प्रकार के होते हैं।

(1) तवेदार हैरो (Disc Horrow) –तवेदार हैरो स्टील के बने नतोदर तवों से बने होते हैं। सामान्यतः तवों का व्यास 45 से 55 सें0 मी0 का होता है। तवेदार हैरो के तवे, तवेदार हल के तवे की तुलना में छोटे होते हैं, परन्तु तवों की संख्या अधिक होती है। अपनी धूरी पर ये तवे 15 सें0 मी0 की दूरी पर स्थित होते हैं। दो अलग–अलग धूरियों पर तवों के दो समूह लगे होते हैं ये सभी तवे अपनी धूरी के घूमने के साथ घूमते हैं। घूमने की क्रिया के साथ ये मिट्टी को काटते हैं और उसे भुरभुरा बनाते हैं।

कर्षण की मांग एवं खींचने वाले यंत्र की शक्ति के आधार पर तवेदार हैरो कई प्रकार की बनावट वाले होते हैं। जैसे Single action

(एक पंक्ति के तवे) Double action (दो पंक्ति के तवे) या off set (अलग–अलग कोणों के तवे) हैरो। Single action हैरो में भी धूरियों के दो सेट होते हैं, जिसपर तवे इस प्रकार लगे होते हैं कि बायीं ओर के तवे मिट्टी को काट कर बायीं ओर तथा दायीं ओर के तवे दायीं ओर मिट्टी फेंकते हैं। Double action हैरो में Singleaction हैरो जैसी दो पंक्तियों में दो–दो Set में तवे फिट होते हैं ताकि एक ही चास (जुताई) में दो–दो जुताइयों के बराबर खेत की तैयारी हो सके। off-set हैरो में तवे दो धूरियों पर इस प्रकार लगे होते हैं कि जो मिट्टी पहले सेट द्वारा बायीं ओर फेंकी जाए वही मिट्टी फिर दायीं ओर फेंक दी जाए। इस प्रकार मिट्टी को मानों मथ दिया जाता है।

(2) स्पाइक टूथ हैरो (Spike tooth horrow) : स्पाइक टूथ हैरो में लोहे के फ्रेम पर लोहे के कील लगे हेते हैं। बैल चालित यंत्र में केवल एक सेट कार्य करता है, परन्तु ट्रैक्टर चालित हैरों में ऐसे तीन–तीन सेट एक साथ जोड़ दिये जाते हैं। ये काँटे खेत में मिट्टी के नीचे छुपे खर–पतवारों के डंठल, जड़ों एवं अन्य वानस्पतिक भाग को खींच कर मिट्टी की सतह पर लाते हैं। चलने के क्रम में हैरो को जगह–जगह पर उठा कर झाड़ दिया जाता है ताकि खर–पतवारों का जगह–जगह पर ढेर लग जाए, जिन्हें चुन कर आसानी से खेत के बाहर कर दिया जाता है। खर–पतवार जमा करने के साथ–साथ यह यंत्र मिट्टी की ऊपरी परत को भुरभुरा भी करता है। यदि बोआई के तुरंत बाद, वर्षा के कारण खेत में पपड़ी पड़ जाए जिससे पौधों के अंकुरों को निकलना मुश्किल हो जाए, तो बैल चालित स्पाइक टूथ हैरो उस पपड़ी को तोड़ने के लिए अनुकूल यंत्र है।

(3) चेन हैरो (Chain horrow) : चेन हैरो भी जुते खेतों से खर–पतवार निकालने का यंत्र है। इसमें कील की जगह भारी सीकड़ लगे होते हैं। जब खेत में यह यंत्र चलाया जाता है तो खर–पतवार इन सीकड़ों में फंस कर सतह पर आ जाते हैं जिन्हें चुन कर खेत से बाहर निकाल दिया जाता है। अपनी वजन के कारण ये सीकड़ ढेलों को तोड़ कर भुरभुरा भी बनाते हैं।

(ख) कल्टीवेटर : कल्टीवेटर सबसे ज्यादा उपयोग में लाये जाने वाला कर्षण यंत्र है, क्योंकि यह अनेकों प्रकार के कार्य करने में सक्षम हैं।

जिन खेतों की मिट्टी हल्की हो, बैठी हुई नहीं हो या जिसके नीचे कड़ी परत नहीं हो वहाँ खेत की तैयारी का सम्पूर्ण कर्षण कार्य कल्टीवेटर से पूरा किया जा सकता हैं। परन्तु यह यंत्र ज्यादा गहरी जुताई नहीं कर सकता। यह 10 से 15 सें0 मी0 की गहराई तक खेत में कर्षण कार्य कर सकता है।

कल्टीवेटर अधिकांशतः ट्रैक्टर चालित ही बनाये जाते हैं। बैल चालित कल्टीवेटर से प्रायः खड़ी फसलों में अन्तरकर्षण का ही कार्य लिया जाता है। ट्रैक्टर चालित कल्टीवेटर में फार दो पंक्तियों में लगे होते हैं। एक धुरी के आगे और एक पीछे होती है। पिछले Shaft पर एक फार अधिक होता है। पिछले दो फारों के बीच वाले स्थान की सीध में अगले Shaft पर एक फार होता है। इस प्रकार पिछले Shaft पर जितने फार लगे होते हैं उससे एक फार कम अगले Shaft पर फिट होता है। कल्टीवेटर 7 से 17 फार वाले बने होते हैं। ट्रैक्टर की शक्ति के आधार पर कम या अधिक फार वाले कल्टीवेटर का चुनाव होता है।

कल्टीवेटर निम्नलिखित कार्य करता है –

1. खेत के ढेलों को तोड़ना एवं मिट्टी को भुरभुरा बनाना।
2. खेत में उगे खर–पतवारों को नष्ट करना।
3. मिट्टी में वायु–संचार को बेहतर बनाना।
4. मिट्टी की सतह पर मिट्टी के महीन कणों का पलवार (Mulch) बना कर जल के वाष्पीकरण को धीमा करना।
5. छिंटवा विधि से बीज को मिट्टी में मिलाना।
6. खेत में उपरिवेशित उर्वरकों को मिट्टी में मिलाना।
7. वर्षा या सिंचाई जल का बेहतर शोषण।

(ग) पाटा (Planks) : खेत के कर्षण के बाद खेत की ऊपरी परत कुछ न कुछ असमतल रह ही जाती है। बीज की बोआई के पूर्व उसे समतल करना आवश्यक होता है। यह कार्य पाटा के द्वारा होता है। पाटा सामान्यतः लकड़ी का बना होता है, परन्तु यह लोहे का भी बना हो सकता है। पाटा जितना चौड़ा और भारी होगा, वह ढेलों को चूर करने तथा खेत को समतल बनाने में उतना ही सक्षम होगा। बीज की बोआई के बाद खेत पुनः थोड़ा असमतल हो जाता है, जिसे पाटा चला कर समतल किया जाता है।

CMYK

यदि बीज की बोआई के बाद बीज मिट्टी से अच्छी प्रकार नहीं ढका जाए तो उसे चिड़ियाँ चुग सकती हैं और मिट्टी से बेहतर सम्पर्क नहीं होने की स्थिति में अंकुरण भी प्रभावित होगा। पाटा चला कर इस आवश्यकता की पूर्ति की जाती है।

(घ) रोलर (Roller) : खेत की तैयारी के बाद मिट्टी कभी–कभी आवश्यकता से अधिक पोली होती है। ऐसी मिट्टियों में बोआई के पूर्व रोलर चला कर मिट्टी को थोड़ा दबाया जाता है। रोलर चलने के क्रम में वे ढेले भी टूट जाते हैं, जो कर्षण के दौरान तोड़े नहीं जा पाये हों।

3. अन्तर कर्षण यंत्र

खड़ी फसल में जो कर्षण कार्य किये जाते हैं उन्हे अन्तरकर्षण की संज्ञा दी जाती है। खड़ी फसल में अधिकांशतः खर–पतवारों को निकालने के लिए निकाई गुड़ाई के कार्य किये जाते हैं। कभी–कभी फसल लगे खेतों की ऊपरी परत कड़ी होकर बैठ जाती है। फलस्वरूप वायु का संचार अवरुद्ध हो जाता है। इसके लिए मिट्टी की ऊपरी परत को तोड़ना आवश्यक हो जाता है। यदि पौधें काफी ऊँचाई वाले हों जैसे कि मक्का या गन्ने के पौधे तो उनके तेज हवा में गिरने की सम्भावना रहती है। ऐसी फसलों में पौधों पर मिट्टी चढ़ाना आवश्यक हो जाता है। जिन फसलों में कन्द मिट्टी के भीतर या सतह के पास बनते हैं उनमें अच्छी संख्या में कन्द बनने के लिए पौधों पर मिट्टी चढ़ाना आवश्यक हो जाता है। ये सभी क्रियायें अन्तरकर्षण के अन्तर्गत आती हैं। अन्तरकर्षण के लगभग सारे यंत्र कल्टीवेटर के ही रूप में होते हैं। कर्षण की आवश्यकता, चलाने वाले की शक्ति और मिट्टी की स्थिति के अनुरूप अन्तरकर्षण के यंत्रों को बनाया जाता है।

चित्र–3, कोनो वीडर

खुरपी और कुदाल सबसे सरल अन्तरकर्षण यंत्र हैं। ये सस्ते होते हैं और अपेक्षाकृत सरलता से उपयोग में लाये जाते हैं। यद्यपि अन्तरकर्षण की गुणवत्ता खुरपी या कुदाल की सर्वश्रेष्ठ हाती है, परन्तु इनमें श्रमिकों की आवश्यकता काफी अधिक होती है।

हो (Hoe) भी एक प्रकार के कल्टीवेटर ही होते हैं जिन्हें एक श्रमिक सरलता से चलाता है। शर्मा हो, रैम हो, इत्यादि इसी श्रेणी के अन्तरकर्षण यंत्र है। इनसे खुरपी या कुदाल की अपेक्षा ज्यादा तेजी से कार्य होता है। ये हो लकड़ी या बाँस के डंडों से जुड़े होते हैं। इन यंत्रों को खींचते हुये पीछे हटते जाना होता है।

धान का रोटरी हो या कोनो वीडर या व्हील हो ऐसे यंत्र हैं जिन्हें आगे–पीछे करने की क्रियाओं के साथ आगे ठेलते जाना होता है। रोटरी–हो और कोनो बीडर धान की फसल की दो पंक्तियों के बीच चलाये जाने वाले यंत्र हैं।

कुछ बैल चालित अन्तरकर्षण के यंत्र हैं जैसे की पंचफारा या हॉर्स हो। इन यंत्रों से दूर–दूर पर लगाई जाने वाली फसलों जैसे मक्का या गन्ना की दो पंक्तियों के बीच चला कर सतह की कोड़ाई की जा सकती है और खर–पतवारों को नष्ट किया जा सकता है। 8 घंटे में लगभग 2 से 3 एकड़ भूमि में, इनके द्वारा अन्तरकर्षण किया जा सकता है।

विभिन्न फसलों जैसे मक्का, गन्ना या आलू में मिट्टी चढ़ाने के लिए रीजर का प्रयोग होता है। ये रीजर बैलों द्वारा चलाये जा सकते हैं। बैलों के उपलब्ध नहीं होने पर यही कार्य कुदाल से किया जा सकता है, परन्तु उस स्थिति में काफी अधिक श्रमिकों की आवश्यकता होगी।

अन्तरकर्षण के इन यंत्रों को ट्रैक्टर के द्वारा भी फसलों के बीच चलाया जा सकता है। परन्तु तब दो पंक्तियों के बीच की दूरी ट्रैक्टर के पहियों के अनुरूप रखनी होगी तथा यंत्रों के फार को अन्तरवर्ती स्थान पर रखना होगा।

4. विशेष स्थितियों के कर्षण यंत्र

(क) सब स्वायलर (Sub-soiler) : सबस्वायलर काफी गहरी जुताई करने वाले यंत्र है। इसके कर्षण की गहराई 40 से0 मी0 से 1.0 मीटर तक हो सकती है।

मिट्टी की निचली परतों में बन गई कड़ी परतों (Hard pan or concretion) को तोड़ने के लिए Sub-Soiler का उपयोग किया जाता है। गहरी नालियाँ बनाने या Under ground drainage chanel बनाने के लिए भी इसका उपयोग किया जा सकता है। इसे खींचने के लिए अधिक शक्ति की आवश्यकता होगी। अतः उच्च अश्व शक्ति (Horse power) के ट्रैक्टर ही इसे चला सकते हैं।

(ख) चिजेल हल (Chiesel plough) :चिजेल हल भी गहरी जुताई करने वाला यंत्र है। यह मिट्टी पलट हल एवं तवेदार हल से अधिक गहराई तक जुताई कर सकता है। चिजेल हल कड़ी परत को तोड़ने के लिए ही प्रयोग में लाया जाता है। इससे 60–70 सें0 मी0 की गहराई तक जुताई हो सकती है।

(ग) मेड़ बनाने का यंत्र (Bund former) : कृषि में बहुधा ऊँचे मेड़ बनाने की आवश्यकता होती है। धान के खेतों की मेड़ों की हर साल मरम्मत करनी होती है ताकि खेत का जल चूहों के बिल एवं अन्य दरारों के माध्यम से खेत के बाहर न चला जाए। मेड़ बनाने या मेड़ों को मरम्मत में काफी श्रमिक लगते हैं और लागत खर्च भी अधिक होता है। Bund former अगल–बगल की मिट्टियों को बीच में लाकर आसानी से मेड़ का निर्माण कर देता है। इसमें दो मोल्ड बोर्ड लगे होते हैं। एक मिट्टी अपने बायीं ओर फेंकता है और दूसरा दायीं ओर। इस प्रकार उंची मेड़ बन जाती है।

(घ) समतलीकरण के यंत्र (Scraper and levellers) : बहुधा खेतों को समतल करने की आवश्यकता होती है। यदि खेत की ढाल कम है तो Scraper से मिट्टी खींच कर खेत को समतल बनाते हैं। परन्तु यदि खेत की ढाल ज्यादा हो, खेत बड़े–बड़े हो या मैदानों के गड्ढे भरने हों तो बड़े–बड़े Levellers का उपयोग किया जाता है। खेती की जमीन को उच्च श्रेणी के समतलीकरण हेतु लेजर संचालित लेवलर (Laser leveller) का प्रयोग होता है।

प्रश्न कोष

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. मिट्टी को पलटने की क्रिया .... कर्षण यंत्रों द्वारा किया जाता है।
2. खड़ी फसल में कर्षण कार्य .... यंत्रों के द्वारा सम्पन्न होते हैं।
3. .... एक कर्षण यंत्र है, जो सभी प्रकार के कर्षण कार्य कर सकता है।
4. मिट्टी पलटने वाले हल में हत्था केवल .... चालित यंत्रों में होता है।
5. सामान्यतः तवेदार हैरो में तवों का व्यास .... से.मी. होता है।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. हल ज़्यादा वजन वाले क्यों बनाये जाते हैं ?
2. अंतरकर्षण के यंत्र बहुत हलके होते हैं । क्यों ?
3. खेतों से खरपतवारों के अवशेष निकालने वाले दो यंत्रों के नाम लिखें।
4. माध्यमिक कर्षण यंत्रों के नाम लिखें।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मोल्ड बोर्ड हल एवं तवेदार हल का अन्तर स्पष्ट करें ।
2. तवेदार हल एवं तवेदार हैरो का अन्तर स्पष्ट करें ।
3. विशिष्ट स्थितियों के कर्षण यंत्रों से मुख्यतः कौन–कौन से कार्य सम्पन्न होते हैं।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मोल्ड बोर्ड हल के विभिन्न भागों का वर्णन करें।
2. सब स्वायलर एवं समतलीकरण के यंत्रों का वर्णन करें।

*****

1.8 मृदा की जोत (SOIL TILTH)

जोत (Tilth) मृदा की किसी स्थिति विशेष का परिचायक है। कर्षण एक क्रिया है जिसका प्रतिफल अथवा जिसकी प्रतिक्रिया जोत के रूप में परिलक्षित होती है। कर्षण को कई तरह से मापा जा सकता है, परन्तु कर्षण की प्रतिक्रिया में उत्पन्न जोत को किसी एक इकाई में मापा नहीं जा सकता। मृदा के विभिन्न भौतिक गुण होते हैं जैसे मृदा की संरचना जो मृदा के कणों के समूह की स्थिति पर आधारित होती है, मृदा की जल धारण क्षमता, मृदा का वायु संचार, मृदा की रन्ध्रता, रन्ध्रों का आकार, मृदा की जल ग्रहण क्षमता (Infiltration), मृदा से होकर जलस्राव (Percolation), मृदा समुच्चय (Aggregates) की उपस्थिति तथा उनकी जलीय स्थिति में स्थिरता (water stable aggregates) इत्यादि। इस संदर्भ में जोत को मृदा के भौतिक गुणों के सम्मिलित रूप में देखा जाता है।

"Tilth is the sum total of the physical properties of soils."

विभिन्न फसलों के सर्वोत्तम विकास के लिए एक विशेष प्रकार की जोत (Tilth) की आवश्यकता होती है, जिसे प्राप्त करने के लिए कर्षण के यन्त्रों के प्रकार तथा कर्षण की संख्या (मात्रा) निर्धारित होती है। कुछ फसलों की जड़ों को अपेक्षाकृत अधिक वायु–संचार की आवश्यकता होती है, जैसे चना, मसूर, तीसी आदि, तो कुछ फसलों को अपेक्षाकृत अधिक नमी और कम वायु की आवश्यकता होती है, जैसे धान, पाट इत्यादि। सभी प्रकार की फसलों को जल एवं वायु के एक विशेष प्रकार के संतुलन की आवश्यकता होती है जिसका निर्धारण जोत (Tilth) के द्वारा किया जाता है। अतएव फसलोत्पादन में जोत एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण पहलू है। कर्षण के द्वारा मिट्टी भुरभुरी होती चली जाती है और मिट्टी की ऊपरी परत हल्की मुलायम (Malleable) बनती जाती है। कर्षण के बाद खेत में चलने पर मिट्टी मुलायम लगती है और चलने पर पैर मिट्टी में धंसते हैं। मिट्टी जितनी ही Friable और Malleable होगी पैर उतना ही अधिक धंसेगा। परन्तु आवश्यकता से अधिक कर्षण होने पर मिट्टी के कणों के समूह बिखरने (Dispersal of soil particles) लगते हैं। फलस्वरूप aggregates तथा water stable aggregates का अनुपात घटने लगता है। साथ ही मिट्टी के दीर्घ (Macro) एवं सूक्ष्म (Micro) रन्ध्रों (pores) का संतुलन बिगड़ने लगता है, जो पौधों के विकास के लिए हानिकारक होता है। अतः जोत की स्थिति एक अत्यन्त ही तकनीकी पहलू है, जो फसल विशेष के लिए अलग–अलग होती है।

अच्छी जोत के विशिष्ट गुण (Characteristics of good tilth)

अच्छी जोत की पहचान मृदा के निम्नलिखित भौतिक गुणों पर आधारित है।

(क) मृदा की संरचना (structure) दानेदार (Granular) एवं Crumbly (मृदा कणों का दानेदार समूह, जिसमें वायु रन्ध्रों की उपस्थिति अपेक्षाकृत बहुत अधिक होती है) हो। सिंचित खेती में बड़े समुच्चय (Aggregates) का अधिकांश प्रतिशत 5 मि0 मी0 से बड़ा हो और असिंचित खेती में 1–2 मि0 मी0 वाले समुच्चय (Aggregates) की अधिकता हो।

(ख) मिट्टी की ऊपरी परत भुरभुरी (Friable) और मुलायम (Malleable) हो।

(ग) मिट्टी कण, समुच्चय (Aggregates) में हो तथा कणों के ये, समुच्चय आसानी से बिखरने वाले नहीं हो तथा सिंचाई एवं वर्षा की स्थिति में भी ये समुच्चय टूट कर बिखरे नहीं (water stable aggregates)।

(घ) मृदा में वायु संचार बाधित नहीं हो।

(ङ) मृदा की जल धारण क्षमता अधिक हो।

(च) मृदा में दीर्घ रन्ध्र (Macro-pores) और सूक्ष्म रन्ध्र (micro-pores) 50–50 प्रतिशत के अनुपात में रहें तो सबसे अच्छा होगा। मृदा के रन्ध्र (pores) भूमि की सतह से लेकर भूगर्भीय जल–तल (under ground water level) तक लगातार बने हों।

(छ) मिट्टी में ढेले (colds) न तो बहुत बड़े हो और न ही अत्यन्त छोटे (धूल सदृश्य) हों। सामान्यतः ढेलों का आकार 15 मि0मी0 से बड़ा और 1–2 मि0मी0 से छोटा नहीं हो।

(ज) मृदा की जल शोषण क्षमता (Infiltration) अच्छी हो।

(झ) मृदा में जल स्राव (Percolation) की गति ना तो तीव्र हो और ना ही अत्यन्त धीमी।

कर्षण (Tillage) एवं जोत (Tilth) में अन्तर

सुनने में कर्षण एवं जोत समानार्थक शब्द प्रतीत होते हैं, परन्तु दोनों में महत्त्वपूर्ण अन्तर होता है। अतएव इसे स्पष्ट रूप से समझना आवश्यक होगा।

कर्षण एक क्रिया है और जोत उस क्रिया का प्रतिफल है। यद्यपि कर्षण के पूर्व भी हर मृदा की जोत (tilth) सम्बन्धी एक स्थिति होती है, जिसमें कर्षण के बाद गुणात्मक परिवर्तन आ जाता है। हल्की मिट्टियों में या उस मृदा में जो बैठी (compact) नहीं हो, उसमें जड़ों का प्रसार एवं पौधों की वृद्धि सामान्य रूप में हो सकती है। यही कारण है कि ऐसी मिट्टियों में प्रारम्भिक कर्षण की कोई आवश्यकता नहीं होती और सीधे माध्यमिक कर्षण से ही शुरुआत हो सकती है। शून्य कर्षण (Zero tillage) भी इसी सिद्धान्त का प्रतिफल है।

कर्षण एक ऐसी क्रिया है, जिसे परिमाण (Quantity) और गुण (Quality) दोनों में मापा जा सकता है। हम किसी खेत में निश्चित संख्या में हल, हैरो या कल्टीवेटर से कर्षण कर सकते हैं और विशिष्ट यंत्रों (Quality) का भी निरूपण कर सकते हैं। जैसे–किसी फसल विशेष के लिए निश्चित हो सकता है कि उसमें एक जुताई, (Ploughing). दो बार हैरो (Harrowing) और दो बार कल्टीवेटर से कर्षण होगा। परन्तु जोत के लिए जोत के गुण तो तय हो सकते हैं पर मात्रा नहीं। जोत मृदा की एक स्थिति है जो कर्षण के पूर्व और कर्षण के बाद भी मृदा में वर्तमान रहेगी, परन्तु कर्षण मृदा के साथ एक यान्त्रिक छेड़–छाड़ (Mechanical Mainpulation) है। कर्षण को इकाइयों में मापा जा सकता है, परन्तु जोत को किसी इकाई में मापना सम्भव नहीं है। जोत बहुत अच्छी, अच्छी, संतोषप्रद, खराब या बहुत खराब हो सकती है। यह आकलन मिट्टी के सभी भौतिक गुणों की स्थिति के आधार पर होता है।

जोत (Tilth) का मिट्टी के भौतिक गुणों पर प्रभाव

जोत यद्यपि मृदा के भौतिक गुणों पर आधारित होता है, पर मृदा के भौतिक गुण भी जोत के परिचायक है। अच्छी जोत का तात्पर्य होगा कि मृदा के भौतिक गुण पौधों की आवश्यकता के अनुकूल बनाये जा चुके हैं। उसी प्रकार खराब जोत इंगित करता है कि मृदा के भौतिक गुण पौधों की आवश्यकता के अनुरूप नहीं बन पाये हैं। कर्षण की Quantity (संख्या) और Quality (यंत्रों का चुनाव) को नियंत्रित कर वांछित जोत (Tilth) तैयार किया जा सकता है। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि भिन्न–भिन्न फसलों की जोत की आवश्यकता भिन्न–भिन्न होगी।

जोत का प्रभाव मृदा के जिन भौतिक गुणों पर पड़ता है वे हैं

(क) रन्ध्रता (Pore spaces)
(ख) संरचना (Structure)
(ग) बल्क डेन्सिटी (Bulk density)
(घ) मृदा का रंग (Soil colour)
(ङ) मृदा जल (Soil water)
(च) मृदा तापमान (Soil temperature)

(क) रन्ध्रता (Pore spaces)

मृदा के महीन कण आपस में मिल कर एक समूह में रहते हैं। मृदा के कण अनेकों प्रकार के समूह बनाते हैं, जिनके ऊपर मिट्टी की जोत (Tilth), उर्वरता एवं उत्पादकता निर्भर होती है। मृदा के इन समूहों के बीच जो रिक्त स्थान होता है उसे रन्ध्र (pore) कहते हैं। ये रन्ध्र सूक्ष्म या दीर्घ आकार के होते हैं। दीर्घ आकार के रन्ध्रों में साधरणतः हवा तथा सूक्ष्म आकार के रन्ध्रों में जल रहता है। जब कर्षण के द्वारा मिट्टी ढीली बनाई जाती है तो रन्ध्रों की संख्या बढ़ती है। जब मृदा की जोत को अच्छा माना जाता है, तब सूक्ष्म तथा दीर्घ रन्ध्र लगभग बराबर अनुपात में होते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि मृदा में केशकीय (Capillary) और केशकीयेत्तर (Non-capillary) रन्ध्र लगभग बराबर होते हैं। यह स्थिति फसलोत्पादन के लिए सर्वोत्तम आँकी जाती है।

(ख) संरचना (Structure)

जिस मृदा में कणों की संरचना दानेदार (Granular) या क्रम्बी (crumb) होती है, उसे फसलोत्पादन के लिए सबसे अच्छा समझा जाता है। जब दानेदार संरचना के कणों के मध्य रन्ध्रों (pores) की संख्या काफी अधिक होती है तो वे क्रम्बी (Crumb) कहे जाते हैं। मृदा में रन्ध्रों का महत्त्व इस तथ्य से और भी स्पष्ट हो जाता है। मृदा की दानेदार या क्रम्बी संरचना के फलस्वरूप मृदा के अपरदन (Erosion) में भारी कमी आ जाती है। वर्षा या सिंचाई का जल सूक्ष्म और दीर्घ रन्ध्रों, दोनों को भर देता है, परन्तु तीन–चार दिनों के अन्दर दीर्घ रन्ध्रों का जल गुरूत्वाकर्षण बल (Gravitational force) के कारण नीचे चला जाता है और मृदा

CMK

जल केवल सूक्ष्म रन्ध्रों में रह जाता है। एक से पाँच मि0मी0 वाले मृदा समुच्चय (soil Aggregates) को पौधों के लिए अच्छा माना जाता है।

(ग) बल्क डेन्सिटी (Bulk density)

जब मिट्टी में कर्षण किया जाता है, तो मिट्टी का आयतन बढ़ जाता है, परन्तु मिट्टी का वजन पूर्ववत बना होता है। फलतः अच्छी जोत के कारण मृदा की Bulkdesnsity घट जाती है, जो पौधों के बढ़ाव के लिए बेहतर स्थिति होती है।

(घ) मृदा का रंग (Soil colour)

कर्षण के क्रम में मिट्टी हल्की ढीली होती है और मिट्टी में वायु–संचार तेज हो जाता है। ऑक्सीजन की पर्याप्तता में जैव–पदार्थों का अपघटन तीव्र गति से होता है। फलतः ह्यूमस का निर्माण होता है। यह ह्यूमस मिट्टी को गहरा भूरा रंग देता है, जो उर्वर मिट्टी का द्योतक होता है। अच्छी जोत का अर्थ है मृदा में बेहतर वायु–संचार जो अन्ततः ह्यूमस (humus) पैदा कर मिट्टी को गहरा भूरा रंग प्रदान करता है।

(ङ) मृदा जल (Soil water)

अच्छी जोत (tilth) का अर्थ है मिट्टी में रन्ध्रों की अधिक संख्या तथा सूक्ष्म एवं दीर्घ रन्ध्रों का संतुलित अनुपात। मिट्टी में पौधों के लिए उपलब्ध जल (Available water) की मात्रा कितनी रहेगी यह बात इन तथ्यों पर आधारित होता है कि जोत की गहराई क्या है, तथा रन्ध्रों की स्थिति कैसी है। अच्छी जोत इन कारकों को बेहतर बनाती है। अच्छी जोत, जल–शोषण, जल–स्राव की गति एवं जल धारण क्षमता (water holding capacity) को भी बढ़ाती है, जो फसलोत्पादन के लिए एक आदर्श स्थिति उत्पन्न करते हैं।

कर्षण के पूर्व भूमि की सतह समतल होती है। वर्षा होने पर जल समतल सतह से होकर खेत के बाहर चला जाता है। परन्तु कर्षण के बाद जो हराइयाँ बनती हैं वह सतह को थोड़ा ऊँचा–नीचा (rough) बना देती है। फलतः वर्षा का अधिक से अधिक जल उसी खेत में शोषित हो जाता है। निम्नलिखित तालिका, कर्षण के बाद जब जोत बेहतर बन जाती है, तब उनमें सुधरे गुणों को स्पष्ट करती है।

तालिका–1

मृदा के भौतिक गुण, कर्षण के पहले और बाद में

भौतिक गुण	बलुआही मिट्टी		चिकनी मिट्टी	
	कर्षण के पहले	कर्षण के बाद	कर्षण के पहले	कर्षण के बाद
जल शोषण (से0मी0 / घ0)	17.64	22.23	1.91	6.8
सतह का खुरदुरापन (Random Roughness) (cm)	1.15	1.75	1.72	2.77
मृदा [illegible] (संतृप्तता के समय) (%)	32.00	38.00	40.00	61.00
बल्क डेन्सिटी (ग्राम / सें0 मी0^3)	1.42	1.11	1.24	0.80

(च) मृदा तापमान (soil temperature)

कर्षण के क्रम में उत्पन्न बेहतर जोत मृदा तापमान को पौधों की आवश्यकता के अनुरूप अनुकूलित करती है। अच्छी जोत के कारण मिट्टी की परतें ढीली हो जाती हैं। फलस्वरूप ताप के परिचालन (Conduction) की गति धीमी हो जाती है और तापमान पौधों की आवश्यकता के अनुकूल बनता है, अर्थात गरमी में मिट्टी का तापमान कम और जाड़े में अधिक होता है।

प्रश्न कोष

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. .... एक क्रिया है और .... उसकी प्रतिक्रिया ।
2. मृदा कणों के समूह को .... कहते हैं।
3. अच्छी जोत में मृदा की ऊपरी परत .... और .... बन जाती है ।
4. क्रम्ब संरचना वह है, जिसमें दानेदार कणों के बीच .... की संख्या ज्यादा होती है।
5. सूक्ष्म रन्ध्रों में .... एवं दीर्घ रन्ध्रों में .... का स्थान होता है।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. मृदा के भौतिक गुणों के नाम लिखें, जिन पर मृदा की जोत की गुणवत्ता आधारित होती है।
2. मृदा के भुरभुरी एवं मुलायम होने का क्या अर्थ है ?
3. मृदा का आयतन बढ़ने पर उसका बल्क डेन्सिटी पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कर्षण एवं मृदा की जोत का अन्तर स्पष्ट करें ।
2. अत्यधिक जुताई से होने वाली हानियों का वर्णन करें।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मृदा की अच्छी जोत के गुणों का वर्णन करें ।
2. मृदा की जोत का मृदा के भौतिक गुणों पर प्रभाव का वर्णन करें।

******

1.9 कर्षण अभ्यास (Practices): पारंपरिक, संरक्षित एवं शून्य कर्षण

प्रतिवर्ष लगभग 534 करोड़ टन मृदा का क्षरण हो रहा है जो कि 16.5 टन/हेक्टर/वर्ष के बराबर है । परिणाम स्वरूप बाढ़ व सूखा जैसी आपदाओं की तीव्रता में वृद्धि देखी जा रही है। संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन के सर्वे के अनुसार यह स्पष्ट हो चुका है कि प्रति वर्ष 27 अरब टन मिट्टी जलभराव, क्षारीकरण के कारण नष्ट हो रही है। मिट्टी की यह मात्रा एक करोड़ हेक्टर कृषि भूमि के बराबर है। कृषि वैज्ञानिक डॉ0 एम.एस. स्वामीनाथन की रिपोर्ट के अनुसार करीब 25 लाख टन नाइट्रोजन, 33 लाख टन फॉस्फेट एवं 25 लाख टन पोटाश की क्षति हो रही है। यदि इस प्रभाव को बचा लिया जाए तो प्रति वर्ष 6000 मिलियन टन मिट्टी की ऊपरी उपजाऊ परत सुरक्षित हो जाएगी एवं इससे करीब 55.3 लाख टन नाइट्रोजन, फॉस्फेट एवं पोटाश की मात्रा भी बचेगी। सामान्य एवं अनुकूल परिस्थितियों में मृदा की एक ईंच मोटी परत के निर्माण में लगभग 300–800 वर्ष लगते हैं, जबकि एक ईंच मिट्टी को उड़ाने या बहाने में आँधी एवं पानी को अल्प समय लगता है। प्रति हेक्टर केवल नाइट्रोजन की कमी के भरपाई के लिए किसानों को औसतन 300–500 रुपयों का व्यय करना होता है।

कर्षण का चयन भूमि, जलवायु एवं फसल की प्रकृति के आधार पर करना सर्वथा उचित होता है। खेतों में उचित नमी होने पर ही जुताई और अन्तःकर्षण क्रिया करनी चाहिए। काफी शुष्क या गीले खेतों में कर्षण के कारण मिट्टी की संरचना का संतुलन बिगड़ जाता है। इसके कारण वायु संचरण के साथ ही जल का प्रवाह भी अवरुद्ध होने लगता है जिससे पोधों की वृद्धि एवं फसल उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

पृथ्वी के वातावरण में हरितगृह गैसों की मात्रा लगातार बढ़ रही है इसके कारण जलवायु में परिवर्तन हो रहा है। जीवाश्म ईंधन, कोयला, पेट्रोलियम, लकड़ी के अंधाधुंध प्रयोग से वातावरण में इन गैसों की मात्रा में वृद्धि लगातार देखी जा रही है। इसके कारण पृथ्वी के तापमान में 0.2°C की वृद्धि दर्ज की गयी है। विगत 150 वर्षों के मौसम विज्ञान आधारित आंकड़ों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि 12 सर्वाधिक गर्म वर्ष रहे हैं तथा इन 12 गर्म वर्षों में से 11 वर्ष 1990 के बाद के हैं। इस तापक्रम वृद्धि के कारण महासागरों के जलस्तर में वर्ष 2100 तक 0.28–0.40 मीटर तक बढ़ोत्तरी का अनुमान है। इस जलवायु परिवर्तन से फसलों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता में कमी आएगी तथा अनेक फसलों का क्षेत्र परिवर्तन होगा। तापक्रम में 1°C की वृद्धि होने पर प्रति हेक्टर 4 क्विंटल धान की उत्पादकता में कमी होगी। जबकि गेहूँ, मक्का, ज्वार एवं सोयाबीन की उपज में प्रति डिग्री औसत दैनिक तापमान में वृद्धि के कारण 5% की कमी हो सकती है। क्योंकि उच्च तापमान के कारण परागकणों व कोशिकाओं की वृद्धि प्रभावित होती है।

जल, भूमि एवं ऊर्जा के विवेकपूर्ण दोहन में संतुलित शस्य क्रियाओं एवं भूमि प्रबंधन की अहम भूमिका है। प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण एवं संवर्धन, भू–उपयोग पद्धतियों, बेहतर जल, ऊर्जा तथा कार्बन प्रबंधन की अब आवश्यकता प्राथमिकता पर निर्धारित किया जाना आवश्यक है।

रैनें एवं जिंग (1957) के अनुसार कर्षण के अंतर्गत भूमि पर की जानेवाली वे समस्त क्रियाएँ आती हैं, जिससे मिट्टी की संरचना में परिवर्तन होता है, खरपतवारों का नाश होता है तथा मिट्टी में उपलब्ध वनस्पतियों आदि कार्बनिक पदार्थों को उलट–पलट दिया जाता है ।

Tillage is any physical soil manipulation which changes structure of soil, "kills weed, or rearranges dead plant materials"

पारंपरिक कर्षण अभ्यास में गहरी एवं बारंबार भूमि तैयारी को, विशेष तौर पर पूरे विश्व में, कृषि के लिए उपयोगी मानने की परंपरा रही है, परन्तु इससे भूमि की भौतिक दशा और भूमि में होने वाले रासायनिक तथा जैविक क्रियाओं पर विपरीत प्रभाव देखा गया है।

(क) पारम्परिक कर्षण

परम्परा से यह मान्यता रही है कि खेत की बारम्बार जुताई कर जितना महीन कर दिया जाए, अच्छे उत्पादन के लिए उतना ही श्रेयस्कर है। गेहूँ की बोआई के क्रम नें यह कहावत प्रसिद्ध है कि "मैदे गेहूँ ढेले चना"। इसका अर्थ था कि गेहूँ की बोआई के पूर्व खेत की बार–बार जुताई कर मैदे जैसा महीन कर दिया जाए। ग्रामीण क्षेत्रों में यह भी प्रचलित था कि गेहूँ का खेत ऐसा होना चाहिए कि यदि उस पर पानी से भरा घड़ा ऊपर से गरने दिया जाए तो वह भी न फूटे। कर्षण के सम्बन्ध में पारम्परिक मान्यतायें इन्हीं कहावतों में परिलक्षित होती हैं। गेहूँ ही की तरह आलू, मक्का, तम्बाकू गन्ना, राई इत्यादि के खेतों में भी बार–बार जुताई कर ऊपरी परत धूल जैसा महीन कर लिया जाता था। यही परम्परागत कर्षण है। परन्तु पारंपरिक कर्षण अभ्यास से पूरे विश्व में भूमि की भौतिक दशा और भूमि में होने वाले रासायनिक तथा जैविक क्रियाओं पर विपरीत प्रभाव देखा गया है।

पारंपरिक कर्षण अभ्यास से निम्न हानि संभावित है –

1. **मिट्टी का दब जाना (Compaction of Soil)**

आधुनिक कृषि यंत्र विशेष तौर पर ट्रैक्टर तथा अन्य वजनी मशीनों से जब खेत में अधिक कर्षण होता है तो मिट्टी दब कर काफी सघन हो जाती है। इस प्रकार की मिट्टियों में जल तथा वायु संचार रुक जाता है। आक्सीजन की आपूर्ति में कमी होने से लाभदायक सूक्ष्मजीवों एक जीवाणुओं की संख्या में भारी कमी हो जाती है। भूमि में खनिज तथा कार्बनिक पदार्थों में होने वाली रसायनिक क्रियाएँ मंद पड़ जाती हैं तथा आक्सीजन के अभाव में विषैले तत्त्व बढ़ने लगते हैं।

2. **मिट्टी अपरदन (Soil Erosion)**

बार–बार जुताई एवं अन्य कर्षण क्रियाओं को करने से मिट्टी की संरचना टूट जाती है । मिट्टी महीन होकर छोटे–छोटे कणों में विभक्त हो जाती है जो कि वर्षा के पानी में साथ बह जाती है। तेज हवा के साथ मिट्टी के बारिक कण उड़कर दूर चले जाते हैं। इस प्रकार मिट्टी की ऊपरी उपजाऊ परत कालांतर में समाप्त हो जाती है।

3. **कार्बनिक पदार्थ का ऑक्सीकरण (Oxidation of Organic matter)**

बारंबार जुताई करने से भूमि में मिला हुआ कार्बनिक पदार्थ मिट्टी की सतह पर आ जाता है। इस प्रकार जो कार्बनिक पदार्थ भूमि की भौतिक दशा सुधार, सूक्ष्मजीवों के पोषण एवं मिट्टी की उर्वरता तथा भू–जलधारण क्षमता बढ़ाने के लिए आवश्यक था, वह भूमि में कम हो जाता है। साथ ही इसका विपरीत प्रभाव पौधों के विकास पर भी होता है। आज वातावरण में बढ़ते हुए कार्बन डाईआक्साईड गैस तथा हरित गृह प्रभाव में इसका बड़ा योगदान हो रहा है।

4. **खेती में लागत (Cost)** : कर्षण स्वमेव एक खर्चीली क्रिया है। बार–बार की जुताई, फसलोत्पादन के लागत खर्च को काफी बढ़ा देती है।

(ख) संरक्षित कर्षण

चित्र–1, बेड प्लान्टर

विगत वर्षों में जुताई पर हुए शोध कार्यों के आधार पर कर्षण के आधुनिक सिद्धांत (Concept) के अनुसार पारंपरिक कर्षण अभ्यास को अस्वीकार किया गया है। यह स्पष्ट हो चुका है कि उर्वरको की उपयोग क्षमता, नमी संरक्षण तथा पौधों का समग्र विकास में पारंपरिक कर्षण की महति भूमिका नहीं है तथा खरपतवार नियंत्रण के अन्य रसायनिक विकल्पों के बाद इस उद्देश्य के लिए अधिक जुताई के सहारे की आवश्यकता नहीं है।

आज पर्यावरण में कार्बन डाईआक्साईड कम करने हेतु मिट्टी में इसकी अधिक मात्रा कार्बन के रूप में संचित करना आवश्यक है। संरक्षित कर्षण में अधिक जुताई की पारंपरिक विचारधारा के स्थान पर न्यूनतम कषर्ण (Minimum Tillage) की आधुनिक विचारधारा को अपनाया गया है। इसके लिए कई प्रकार के नवीन कृषि यंत्रों का प्रयोग आज आम हो गया है ।

आधुनिक समय में वैज्ञानिकों ने महसूस किया कि कृषि के क्षेत्र में जितनी हानि अत्यधिक कर्षण ने पहुँचाई है उतनी किसी और कार्य ने नहीं। उपरोक्त तथ्यों के संदर्भ में न्यूनतम कर्षण की आधारशीला रखी गई। उद्देश्य यह था कि कर्षण की संख्या को कितना कम से कम किया जाए कि मिट्टी के गुणों में कोई कमी नहीं आने पाये और उपज भी एक सीमा से अधिक प्रभावित नहीं हो। बाद में प्रयोगों ने सिद्ध किया कि अधिकांश फसलों के लिए मात्र दो या तीन कर्षण पर्याप्त होंगे। जबकि पारम्परिक कर्षण में 8–10 जुताई तक की जाती रही है।

अतः परिभाषा के अनुसार "न्यूनतम कर्षण, कर्षण की वह कम से कम संख्या है जहाँ तक मिट्टी के गुणों में कोई ह्रास नहीं होता और फसल विशेष की उपज में भी कोई महत्वपूर्ण गिरावट नहीं होती है" (Minimum tillage is that number of tillage up to which the properties of soil is not impaired and the yield of that specific crop is also not affected adversely)।

आधुनिक कृषि में कर्षण की संख्या में काफी कमी आ गई है। परिक्षणों से यह स्पष्ट हो गया है कि न्यूनतम कर्षण से न केवल उत्पादन व्यय में कमी होती है बल्कि समय की भी बचत होती है जिससे सघन खेती (Intensive Cultivation) भी संभव हुआ है। कर्षण पर किए गए परिक्षणों से यह बात सामने आयी है कि अधिकांश फसलों के लिए एक गहरी जुताई मिट्टी पलट हल से

तथा दो बार हैरो चलाना उपयुक्त होता है। संरक्षित कर्षण के निम्नलिखित लाभ है –

(i) खेती की लागत (Cost of Cultivation) कम होती है ।

(ii) मिट्टी सधन (Compact) नहीं होती है ।

(iii) मिट्टी की संरचना (Soil Structure) खराब नहीं होती है ।

(iv) भू–क्षरण (Soil Erosion) कम होता है ।

(v) हरित गृह (Green House) प्रभाव में कमी होती है ।

(vi) भूमि की जलधारण क्षमता में वृद्धि होती है ।

चित्र–2, रोटावेटर

(ग) शून्य कर्षण (Zero Tillage)

कर्षण को कम करने की चरम सीमा 'शून्य कर्षण' या नो–टिलेज (no-tillage) है। इस पद्धति के अंतर्गत किसी प्रकार की जुताई नहीं की जाती है और किसी प्रकार का अंतः कर्षण (Inter Culturing) भी नहीं किया जाता है। शून्य कर्षण में खरपतवारों को शाकनाशियों के द्वारा नष्ट कर दिया जाता है और फसलों के बीज को सीडड्रील से बोआई कर दिया जाता है। भूमि की सतह पर पड़े पिछली फसल के अवशेष पलवार (Mulch) का काम करते हैं।

शून्य कर्षण न्यूनतम कर्षण का अन्तिम सम्भावित रूप है। परिभाषा के अनुसार "शून्य कर्षण भूमि की सतह की वह छेड़छाड़ है जो बीज के मिट्टी के नीचे पहुँचाने और सतह पर चलने फिरने तक सीमित है" (Zero tillage is mechanical manipulation of surface soil limited only to traffic movement and sowing of seed.)

चित्र–3, शून्य जुताई यंत्र

शून्य कर्षण से संरक्षित कर्षण के लाभ के अलावा समय एवं श्रम की वचत, मिट्टी की संरचना में सुधार तथा जैविक कार्बन में वृद्धि होती है।

शून्य कर्षण वैसे क्षेत्रों में ज्यादा अपनाया जाना चाहिए जहाँ की मिट्टी कम सधन हो तथा भूमि में अधिक रध्रावकाश (Pore-space) के साथ ही जैविक सक्रियता (Microbial Activity) अधिक हो।परन्तु दीर्घकाल तक शून्य कर्षण के अभ्यास द्वारा हानि भी होती है जो निम्नलिखित है:–

(i) शून्य कर्षण खरपतवारों के पनपनें में सहायक होता है।

(ii) इससे मिट्टी जनित कीटों एवं रोगों के प्रकोप में वृद्धि होती है एवं इनके नियंत्रण पर कालांतर में ज्यादा ऊर्जा की खपत होती है।

अतः पारंपरिक कर्षण अभ्यास न्यूनतन कर्षण के साथ शून्य कर्षण को चक्रीय क्रम (एक के बाद एक) में उपयोग करके हम कुल खर्च होने वाली ऊर्जा में बचत करके पर्यावरण को होने वाले नुकसान से बचा सकते हैं ।

प्रश्न कोष

वस्तुनिष्ट प्रश्न

1. अधिक सिंचाई के कारण इनमें से भूमि में क्या विकसित होता है ?

   (i) नमी (ii) भूक्षरण (iii) लवणीय (iv) उपजाऊ

2. मिट्टी में सघनता विकसित होने के लिए कौन जिम्मेवार है ?

   (i) शून्य कर्षण (ii) संरक्षित कर्षण (iii) उर्वरक (iv) ट्रैक्टर

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. शून्य कर्षण से खरपतवार नियंत्रित होता है ? हाँ / नहीं
2. वातावरण में तापमान वृद्धि से धान उत्पादन में वृद्धि होगी ? हाँ / नहीं
3. संरक्षण कर्षण से भू–क्षरण में कमी होती है ? हाँ / नहीं

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. तापमान वृद्धि से महासागर के जल स्तर में औसत संभावित वृद्धि कितनी होगी ?
2. कर्षण का उद्देश्य खरपतवार नष्ट करना है – यह किसका मत है ?
3. कार्बन के सर्वाधिक संरक्षण के लिए कौन–सा कर्षण उपयुक्त है ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. कर्षण के विभिन्न मतों पर प्रकाश डालें ?
2. पारंपरिक कर्षण प्रयोग के हानि पर प्रकाश डालें ?
3. संरक्षित कर्षण एवं शून्य कर्षण में क्या अंतर है ?

1.10 बुआई/प्रतिरोपण विधि, बुआई की गहराई, रोपणी और कटाई

फसल उत्पादन के लिए बीज या रोपण सामग्री को भूमि में यथास्थान पर रखना जिससे कि अंकुरण एवं पौधे के विकास में सहायक हो यह कार्य बुआई/प्रतिरोपन के नाम से जाना जाता है। बुआई/प्रतिरोपन के कार्य से पौधों की वांछित संख्या को खेत में बनाये रखा जाता है, जिससे कि अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सके। बीज की बुआई करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना अति आवश्यक है।

बुआई की विधि में बीज को सीधे मुख्य खेत में डालना बुआई कहलाता है। फसल बोने की निम्नलिखित मुख्य विधियाँ हैं –

1. छिटकवाँ बुआई
2. पंक्तियों में बुआई
   (i) देशी हल के पीछे बीज बोना
   (ii) डिबलर की सहायता से बुआई
   (iii) सीड ड्रिल/शून्य जुताई मशीन से बुआई
   (iv) मेढ़ों पर बुआई

1. छिटकवाँ बुआई

फसलों को बोने का यह सबसे सरल, सस्ता और पुराना तरीका है । इस ढंग से लगभग सभी प्रकार की फसलें बोई जा सकती है। यह तरीका छोटे बीज वाली फसलों की बुआई हेतु व्यवहार किया जाता है, जैसे – धान, गेहूँ, बरसीम, सरसों, मसूर, मूँग आदि जिसे कम दूरी पर लगाया जाता है ।

लाभ :

- समय और श्रम की बचत
- बुआई कार्य करना सरल
- किसी विशेष यंत्र की आवश्यकता नहीं

हानि :

- बीज की गहराई, आपस की दूरी तथा बीज की मात्रा पर नियंत्रण नहीं रखा जा सकता । फलस्वरूप जो बीज भूमि में अच्छी तरह नहीं मिल पाते हैं, उन्हें पक्षी खा जाते हैं और जो अधिक गहराई पर चले जाते हैं, वे सड़ जाते हैं ।
- निराई–गुड़ाई का कार्य करने में कठिनाई होती है तथा उन्नतशील कृषि यंत्रों का प्रयोग नहीं किया जा सकता है ।
- बीज की मात्रा अधिक लगती है ।
- सिंचाई करने में समय तथा पानी अधिक लगता है ।
- वांछित पौधे की संख्या नहीं रहने के कारण उपज में कमी आ जाती है ।

2. पंक्तियों में बुआई

छिटकवाँ विधि की अपेक्षा पंक्तियों में बुआई करना हर दशा में अच्छा है । पंक्तियों में फसल बोने के निम्नलिखित लाभ हैं, जिसके कारण "पंक्ति में शक्ति" कहा गया है –

- पंक्तियों में बोई गई फसल में बीज की गहराई तथा पौधें के बीच की दूरी पर नियंत्रण रेखा जा सकता है, जिससे पौधों के बीच होने वाली प्रतिस्पर्धा को सरलता से दूर किया जा सकता है ।
- बीज की मात्रा कम लगती है ।

- खड़ी फसल में खरपतवार नियंत्रण, सिंचाई, उर्वरक, दवा छिड़कना आदि कार्य आसानी से तथा उन्नत कृषि यंत्रों की सहायता से भी की जा सकती है ।
- पौधों को सूरज की रोशनी ठीक से मिल पाती है, जिससे प्रकाश संश्लेषण अधिक तीव्रता से होता है और उपज अधिक होती है ।
- आवश्यकतानुसार पंक्तियों के बीच की भूमि का उपयोग अन्तरवर्ती फसल की खेती के लिए भी किया जा सकता है।
- फसल की कटाई में सुविधा होती है ।

(i) **देशी हल के पीछे** : यह एक बहुत ही सरल विधि है । अन्तिम जुताई तथा पाटा लगाने के बाद खेत में बीज बोने के लिए जुताई की जाती है । एक आदमी हल चलाता है तथा दूसरा आदमी हल के पीछे–पीछे हाथ से सीधे पंक्तियों में या हल में लगा हुआ चोंगा में बीज डालता जाता है । बुआई के बाद बीज को हल्का पाटा लगा कर ढक दिया जाता है । इस विधि से बुआई में देखा जाता है कि –

- बीज उचित गहराई और स्थान पर नहीं डल पाता है, जिसके कारण पौधे की संख्या कम रह जाती है ।
- पंक्तियों की दूरी समान नहीं रह पाने के कारण बीज की बुआई समान दूरी पर नहीं हो पाती है।
- समय अधिक लगता है ।

(ii) **डिबलर की सहायता से** : डिबलर लकड़ी / लोहा का साधारण यंत्र होता है। इस यंत्र में चौकोर फ्रेम पर तीन कतार में खूटियाँ लगी रहती हैं। फ्रेम के बीच में ऊपर की ओर डंडा लगा रहता है। इस यंत्र से बुआई के लिए अच्छी तरह से तैयार खेत में उचित नमी का होना बहुत आवश्यक है । डिबलर को सावधानी से मिट्टी में दबा कर धीरे से उठा लिया जाता है । इस प्रकार से बने छेदों में एक–दो दाना डालकर मिट्टी से ढक दिया जाता है और इसी प्रकार पूरे खेत में बुआई कर दी जाती है। इस विधि से बोने के निम्नलिखित लाभ हैं :–

- बीज की बचत होती है । नई किस्म के बीज को बढ़ाने में यह विधि सबसे अच्छी है ।
- इस विधि से बोये गये बीजों में अंकुरण अच्छा होता है ।
- पौधों में कल्ले अधिक निकलते हैं ।
- निराई–गुड़ाई सरलता से की जा सकती है ।
- पौधे स्वस्थ रहते हैं और बालियाँ लम्बी तथा दाने भी सुडौल होते हैं ।
- पौधों के बीच की दूरी समान रहती है और बीज की गहराई पर भी नियंत्रण रखा जा सकता है।
- इस विधि से खेत में पौधों की वांछित संख्या को व्यवस्थित रखा जा सकता है ।
- छोटे जोत के किसानों द्वारा इस विधि को सरलता से अपनाया जा सकता है ।

(iii) **सीड ड्रिल / शून्य जुताई मशीन से बुआई** : बीज बोने के लिए उपयोग में लायी जाने वाली मशीन को सीड ड्रिल कहते हैं। इस मशीन से बीज बोने के साथ–साथ खाद डालने तथा ढकने का काम एक साथ किया जाता है । सीड ड्रिल मशीन का उपयोग जुताई एवं तैयार की गयी खेत में की जाती है । सीड ड्रिल की तरह ही बिना जुताई की गयी खेत में पर्याप्त नमी की अवस्था में शून्य जुताई मशीन द्वारा बुआई का कार्य किया जाता है । इन मशीनों को बैलों व ट्रैक्टर से उनकी क्षमता के अनुसार चलाया जाता है । बुआई के लिए यह विधि सबसे अच्छी मानी जाती है क्योंकि बीज की दूरी, गहराई, मात्रा आदि पर पूरा–पूरा नियंत्रण रखा जाता है तथा समय भी कम लगता है ।

(iv) **मेढ़ों पर बुआई** : कुछ फसलों को समतल चौरस खेतों में पंक्तियों में न बोकर मेड़ों पर बोया जाता है अथवा कूड़ों में बुआई कर मिट्टी चढ़ाई जाती है, जैसे आलू, मक्का, चुकन्दर आदि । मेड़ों पर बुआई करने से कन्द तथा जड़ आदि के बढ़वार में सुविधा होती है ।

प्रतिरोपण (Transplanting)

पौधा रोपण कुछ फसलों जैसे धान, विभिन्न प्रकार की सब्जियों आदि को उगाने की एक विशेष विधि है । इस विधि में बीज पहले नर्सरी में बोए जाते हैं और जब पौधे तैयार हो जाते हैं, तो उसे मुख्य खेत को तैयार कर रोप दिया जाता है । पौध रोपण उन्हीं फसलों में किया जाता है, जिसकी जड़ें अधिक फैली रहती है । जड़ें पौध रोपण के बाद पानी एवं पोषक तत्वों को तुरंत लेना शुरू कर देती हैं और नई जड़ों का बनना तत्काल शुरू हो जाता है । नई जड़ों का बनना पौधों की अवस्था और उसके अन्दर सुरक्षित पोषक तत्वों की मात्रा पर निर्भर करता है । पौध रोपण सामान्यतया पंक्तियों में किया जाता है ।

प्रतिरोपण विधि में बीज को पहले बीजस्थली या नर्सरी में लगाया जाता है । फसल के अनुसार नर्सरी बनाने का तरीका अलग–अलग होता है । नर्सरी में नवजात पौधों या बिचड़ों को अच्छी देख–भाल में उगाया जाता है। सिंचाई, खाद–उर्वरक, खरपतवार नियंत्रण तथा कीट–व्याधि से बचाव का खास ध्यान रखा जाता है । पुनः जिस खेत में पौधों को प्रतिरोपित करना है, को आवश्यकतानुसार तैयार कर अनुशंसित दूरी व गहराई पर रोपनी कर दी जाती है ।

इस विधि का यह लाभ है कि पौधों को प्रारम्भिक अवस्था में जब वे कोमल तथा कमजोर होते हैं, पौध घर में पानी, उर्वरक, कीट–व्याधि, खरपतवार आदि का प्रबंधन सरलतापूर्वक तथा कम खर्च में किया जा सकता है और मुख्य खेत की तैयारी के लिए भी पर्याप्त समय मिल जाता है । सामान्यतः पौध रोपण का कार्य मानव श्रम के द्वारा किया जाता है, जिसमें खर्च अधिक लगता है। पौधे रोपण के कार्य को खासकर धान के प्रतिरोपण हेतु मशीन का भी प्रयोग किया जा रहा है ।

बुआई / प्रतिरोपण प्रबंधन

बुआई/प्रतिरोपण की विधियों के साथ–साथ बीज का अंकुरण, पौधों की उचित वृद्धि एवं विकास और अधिक उपज के लिए बुआई से संबन्धित कुछ खास प्रबंधन के बिन्दुओं को ध्यान में रखना आवश्यक है जैसे :–

(क) बुआई / प्रतिरोपण का समय

- तापमान,
- नमी,
- दीप्तिकाल,
- फसलों की प्रभेद

(ख) बीज बोने की गहराई

- फसल व उसकी किस्में,
- भूमि की नमी,
- भूमि का प्रकार

(ग) बीज की मात्रा तथा बोने की दूरी

- भूमि उर्वरता,
- फसल बोने का उद्देश्य,
- बोने का समय,
- भूमि में नमी की मात्रा,
- अंकुरण प्रतिशत,
- बीज का आकार एवं वजन,
- बोने की विधि एवं दूरी

कटाई

फसलों की खेती में कटाई कार्य सबसे महत्वपूर्ण है। क्योंकि लागत एवं परिश्रम का परिणाम मिलता है। कटाई का कार्य उचित समय तथा वांछित यंत्रों से नहीं की गयी तो उत्पादन में कमी ही नहीं बल्कि फसल की गुणवत्ता पर भी प्रभाव पड़ता है।

विभिन्न फसलों को काटने का तरीका अलग–अलग होता है। कटाई के कुछ मौलिक सिद्धांत प्रत्येक फसल के लिए लागू होते हैं, जो निम्नलिखित हैं : –

1. प्रत्येक फसल को जहाँ तक हो सके, पक जाने के बाद सही अवस्था अर्थात दैहिक परिपक्वता (Physiological maturity) में ही काटना चाहिए। यदि फसल अधिक पक जाती है तो उससे दाने गिर जाने या उसकी गुणवत्ता खराब हो जाने का डर रहता है।

C M K

यदि फसल पूर्णरूप से पकने से पहले काटी जाती है तो सम्भव है कि उत्पादन तथा गुणवत्ता में कमी हो जाए ।

2. कुछ फसलों को कम पकी हुई अवस्था में काटने से अधिक लाभ होता है । फसल की ऐसी दशायें :
   - जब फसल पकने पर झड़ने लगे
   - फसल की कटनी एक साथ पकने पर हो
   - सब्जी और फल को दूर भेजना हो
   - फसल की गुणवत्ता गोदामों में पकने से बढ़ती हो
   - फसल जल्दी बेचने से अधिक मूल्य मिलता हो
3. फसल पकने के समय ओला, पानी, बाढ़ आदि की सम्भावना हो तो फसल को पहले ही काट लिया जाए ।
4. फसल काटंने के बाद उसके दानों में नमी कम (लगभग 8–12 प्रतिशत) रहना चाहिए, अन्यथा भण्डारण में कीट–व्याधि नुकसान पहुँचा सकते हैं ।
5. एक ही मौसम में बोई गई विभिन्न फसलों की कटनी अलग–अलग की जानी चाहिए ।

सामान्यतया फसलों की कटाई हसिया से की जाती है । कटाई के लिए अधिक कुशलता वाली हसिया उपलब्ध हैं । बड़े क्षेत्रफल में फसलों की कटाई हेतु मशीन जैसे – रीपर (Reaper)] मोअर (Mower),खुदाई का मशीन (Digger)] का व्यवहार किया जाता है। बड़े पैमाने पर फसलों की कटाई, मड़ाई व ओसाई एक साथ करने वाली मशीन, जिसको कम्बाइन (Combine) कहते हैं, प्रयोग में लाई जा रही है । कटाई करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि फसल ज्यादा न पक गई हो, अन्यथा दानों के झड़ जाने का डर रहेगा । साथ ही मशीनों को इस प्रकार संचालित किया जाए कि फसल खेत में न छूटे तथा दाने नष्ट न हो । बीज के लिए उत्पादित फसलों की कटाई दैहिक परिपक्वता अवस्था के बाद करें । अधिकतर फसलों में यह अवस्था 25–30 प्रतिशत बीज–नमी पर आती है । कम्बाइन से धान – गेहूँ की कटाई की बाद पुआल व फसल अवशेष को खेत में जला दिया जाता है । यह एक गलत क्रियाकलाप है, जिसे नहीं करना चाहिए ।

विभिन्न फसलों की कटाई विभिन्न तरीकों से की जाती है, जैसे :

गन्ने की कटाई

गन्ने की कटाई का उपयुक्त समय वह होता है, जबकि गन्ने की सूखी पत्तियाँ गिरनी आरम्भ हो जाए और उसका शर्करामान (Brix) लगभग 18 प्रतिशत हो जाए । इस समय गन्ने को पहले भूमि के पास से काट देना चाहिए तथा काटने के बाद सूखी पत्तियों तथा अगोले को अलग कर लेना चाहिए ।

आलू, चुकन्दर, मूँगफली इत्यादि की कटाई

इन फसलों की उपज भूमि के अन्दर होती है । इनके काटने का उपयुक्त समय वह है, जब तने से पत्तियाँ गिरने लगें या पीली पड़कर सूख जाए। इनको काटने के लिए भूमि की खुदाई करनी पड़ती है । यह काम अधिकतर हाथ से किया जाता है, लेकिन अब खुदाई की मशीनें (Diggers) भी उपलब्ध हो गई है, जिनका प्रयोग किया जाता है । इनकी खुदाई करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कन्दों, जड़ों या फलियों को क्षति न पहुँचे अन्यथा भंडार में रखने पर इनके सड़ने का भय रहेगा। साथ ही यह भी आवश्यक है कि वे सब भूमि से पूर्णरूप से निकाल लिए जाए।

जूट, पटसन तथा सनई की कटाई

ये फसल रेशे के लिए उगायी जाती हैं। इनके काटने का उपयुक्त समय फूल आने पर होता है। यदि देर से कटाई की गयी तो रेशा मोटा होगा और उसकी गुणवत्ता कम हो जाएगी । इसी प्रकार समय से पहले काटने पर रेशे कमजोर रह जाएँगे। इन फसलों को जड़ के पास से हँसिए या गंड़ासे की सहायता से काट लिया जाता है। यदि जूट की खेती खड़े पानी में की गई है तो पूरा पौधा ही उखाड़ लिया जाता है। बाद में पौधे से पत्तियाँ तथा जड़ें अलग कर दी जाती हैं तने को 2–3 दिन खेत में सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है।

चारे की फसलों की कटाई

चारे की फसलों की कटाई के सिद्धांत अन्य फसलों से भिन्न है। चारे की फसल काटने का समय निर्धारण कई बातों पर निर्भर करता है जैसे, उपज प्रति हैक्टर कब अधिक होगी, किस समय चारा काटने पर वह जानवरों कें लिए अधिक पौष्टिक व पाचनशील होगा तथा काटने के बाद सर्वोत्तम समय फूल आने का होता है, क्योंकि इस समय उत्पादन की मात्रा और पौष्टिकता का एक अच्छा समन्वय होता है । लेकिन यह बहुवर्षी चारे के लिए लागू नहीं होता। बरसीम को काटते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि पौधों को भूमि की सतह से इतना ऊपर से काटें कि नीचे शाखाओं पर नई शाखाएँ उत्पन्न करने वाली कलियाँ बनी रहें।

प्रश्न कोष

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. पंक्तियों में बुआई से बीज की मात्रा पर नियंत्रण रख सकते हैं ? हाँ / नहीं
2. प्रति इकाई क्षेत्र में बीज की उचित मात्रा रखने पर अधिक उपज प्राप्त होती है? हाँ / नहीं
3. भूमि में नमी की मात्रा कम होने पर बीज दर बढ़ जाता है ? हाँ / नहीं
4. फसल बोने के उद्देश्य के साथ–साथ बीज दर घटती–बढ़ती है ? हाँ / नहीं
5. छोटे आकार की बीज दर प्रति हैक्टर अधिक लगता है ? हाँ / नहीं

लघु उत्तरीय प्रश्न

निम्न पर टिप्पणी करें –

1. मेढ़ों पर बुआई।
2. छिटकावा विधि ।
3. सीड ड्रिल से बुआई।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. छिटकावा विधि से बोआई के लाभ–हानि का वर्णन करें।
2. चारा फसल की कटाई पर प्रकाश डालें।
3. डिबलर से क्या लाभ है ?

*****